प्रतिबोध

प्रवचनकार

शासन प्रभावक प्रखर वक्ता

आचार्य श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज

प्रेरक

ज्योतिर्विद् मुनिराज श्री अरुणोदयसागरजी महाराज

प्रकाशक

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन

कोबा

* *प्रतिबोध*

आचार्य श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म.

* *प्रकाशक/प्राप्तिस्थान*

श्री अरूणोदयं फाउन्डेशन

कोबा, जिला गांधीनगर

* *तृतीय संस्करण,* वि सं २०५०, कार्तिक शुक्ला सप्तमी, दिनाक २०-११-९३

* *शुभ निमित्त*

मुनि श्री अरुणोदयसागरजी म को गणिपद प्रदान

* *प्रतियाँ १५००*

* *मूल्य २० /-*

* *टाईप सेटीग एव मुद्रक :*

पार्श्व कोम्पयूटर्स, अहमदाबाद-५०

फोन : ३९६२४६

समर्पण

यह पुस्तक समर्पित है-

भवसागर मे आकठ निमग्न

उस धर्मजिज्ञासु मानव समाज को

जिसके कोमलतम अन्तःकरण मे

शाश्वत-सुख पाने की प्रबल

उत्सुकता जागृत हो चुकी है !

— पद्मसागरसू

प्रकाशकीय

प्रथम सस्करण से

चातुर्मास काल मे पानी की तरह प्रवचनों की बरसात होती है, किन्तु सरोवर के समान किसी ग्रन्थ मे यदि उसे सकलित कर लिया जाय तो प्रवचनकाररुपी मेघ के अन्यत्र विहरने पर भी पिपासु जिज्ञासुवृन्द उससे पर्याप्त लाभ उठाता रह सकता है ।

इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर परमपूज्य प्रात·स्मरणीय आचार्यप्रवर सद्गुरुदेव श्रीमत्पद्मसागरसूरीश्वरजी म सा के प्रवचनो का यह अभूतपूर्व सकलन आज "प्रतिबोध" पुस्तक के नाम से श्री अरुणोदय फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित करते हुए हमे विशेष हर्ष का अनुभव हो रहा है ।

इस अवसर पर, सुव्यवस्थित रुप से सरल भाषा मे समस्त प्रवचनो का पुनर्लेखन करनेवाले अनुभवी सम्पादक पण्डित श्री परमार्थाचार्य को नही भुलाया जा सकता, जिन्होने दिनरात कठोर परिश्रम करके कम से कम समय मे इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार कर दी ।

अन्त मे हम आश्वासन देते है कि यदि समाज मे इस ग्रन्थ का स्वागत हुआ तो शीघ्र ही हम कुछ और ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित करने का प्रयास करेगे ।

तृतीय सस्करण की बेला मे

परम पूज्य आचार्य प्रवर श्रीमत पद्मसागरसूरीश्वरजी म सा के शिष्य एव हमारे मार्गदर्शक मुनि प्रवर श्री अरूणोदयसागरजी म सा को गणिपद प्रदान प्रसग पर 'प्रतिबोध' का तृतीय सस्करण प्रकाशित करते हुए हमे परम प्रसन्नता हो रही है ।

इस प्रकाशन मे सहयोगी सभी व्यक्तियों के हम अत्यत आभारी है व भविष्य मे भी हमें इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा ऐसी आकाक्षा सह

अध्यक्ष एव ट्रस्टीगण
श्री अरुणोदय फाउन्डेशन
कोबा - ३८२ ००९

अपनी ओर से

जम्म दुक्ख जरा दुक्ख रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु ससारो जत्थ कीसन्ति जन्तुणो ।।

(जन्म का और बुढापे का दु:ख हे - मृत्यु का और बीमारियो का दु:ख हे । अरे यह ससार दु ख से कितना भरा हुआ हे ! जहा प्राणी कष्ट पा रहे हे ।)

सासारिक दु.खो से मुक्त कौन कर सकता है ? ज्ञान । मनीषियो का यह डिण्डिम घोष हे :-

ऋते ज्ञानान्न मुक्ति. ।।
(ज्ञान के बिना मुक्ति नही हो सकती)

फिर भौतिक पदार्थो के ज्ञान को विद्या या विद्वत्ता नहीं कहते । वास्तविक विद्या वही है, जिससे मुक्ति मिले :-

सा विद्या या विमुक्तये ।
(जो मुक्त करे वही विद्या हे)

दु:खो से मुक्त होने की विद्या मे वही निष्णात होता हे, जिसे सत्य का ज्ञान हो । जगत्कल्याण ही सत्य हे । हमे उसका अन्वेषण करना हे ।

जिनसे अपना और दूसरों का कल्याण हो- सब का भला हो, उन नीतियो- नियमो-सिद्धान्तो का अन्वेषण करना ही सत्यान्वेषण कहलाता है ।

अब प्रश्न यह हे कि सत्य का अन्वेषण केसे किया जाय ? कौन करे यह कार्य ? इसका उत्तर प्रभु महावीर के इस प्रेरणा वचन मे विद्यमान हे :-

अप्पणा सच्चमेसेज़ा ॥

उत्तराध्ययन ६/२

(स्वय ही सत्य का अन्वेषण करना चाहिये)

शास्त्रकारो ने अपने अनुभव लिखे है । हम अपने अनुभवों से उनकी तुलनात्मक जाँच करे । इसके लिए हमे अपने चित्त को चिन्तन से जोडना होगा- मन को मनन से मथना होगा बुद्धि को बोध से सम्बद्ध करना होगा, तभी विचारकता विकसित होगी- आत्मा स्वभाव मे निमग्न होगी और प्रतिपल शाश्वत सुख की अनुभूति हो सकेगी ।

परमपूज्य गुरुदेव के सान्निध्य मे शास्त्रो का अध्ययन करने से जो कुछ मे समझ पाया हूँ, उसे प्रवचनों के माध्यम से परोसने का मै यथामति प्रयास करता रहता हूँ । यह ग्रन्थ उसी साधारण प्रयास का एक फल है । कैसा है ? इसका निर्णय पाठको पर छोडकर मै अपनी वाणी को आज के लिए विराम देता है ।

आपका हितैषी,

पद्मसागरसूरि

सुकृत के सहयोगी

परम शासन प्रभावक आचार्य प्रवर श्रीमत्
पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब की सत्प्रेरणा से
रादेर-निवासी (वर्तमान मे भीवडी)
श्रीमति मधुकान्ता सुमनलाल इच्छापोरिआ
तथा
कनकप्रभा एस शाह
का इस पुस्तक के प्रकाशन मे सुन्दर आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है तदर्थ हम ट्रस्ट की ओर से आपको धन्यवाद देते हुए आभार व्यक्त करते है ।

ट्रस्टी गण
श्री अरुणोदय फाउन्डेशन- कोबा

शीर्षक-सूची

प्रवचन - खण्ड

धर्म का स्थान

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर स्वामी के अनुसार कर्म बाँधते समय जीव विचार नहीं करता; इसीलिए वह विकार का शिकार बन जाता है ।

जीवनभर वह परिग्रह के पीछे पडा रहता है । धन प्राप्त करने के लिए वह कोई भी दुष्कृत करने मे नहीं हिचकिचाता । वृद्धावस्था भी उसमे बाधक नहीं बनती । शरीर शिथिल होने पर भी तृष्णा शिथिल नहीं होती । बाल सफेद होने पर भी मन काला बना रहता है । दाँत गिर जाने पर भी लोभ उठता रहता है । कितनी विचित्र बात है ?

राजा कुमारपाल ने किसी चूहे की स्वर्णमुद्राएँ उठा ली थीं तो वह सिर फोड कर मर गया था- इससे पता लगता है कि तिर्यञ्च गति मे भी तृष्णा अपना दुष्प्रभाव दिखाती है; फिर मनुष्य गति की तो बात ही क्या ?

सुना था कि एक आदमी के पाँच सौ रुपये किसी ने चुरा लिये । इससे वह इतना अधिक दु:खी हुआ कि दु:ख से मुक्त होने के लिए अपने शरीर पर घासलेट छिडककर उसने आत्मा हत्या कर ली !

शकराचार्यने लिखा है :-

> "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्
> नास्ति तत: सुखलेश: सत्यम्"

अर्थ (धन) को हमेशा अनर्थ (अनिष्ट) समझो । सचमुच उस मे जरा भी सुख नही है ।]

एक दृष्टान्त द्वारा यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगी :-

एक फकीर सामने से भागता हुआ चला आ रहा था । दो मित्रों ने उसे रोक कर भागने का कारण पूछा । फकीर ने कहा :- "मैंने मार्ग मे अमुक वृक्ष के नीचे मानवमारक को देखा था । उससे बचने के ही लिए मै भागकर चला आ रहा हूँ ।"

फकीर चला गया । मित्र आगे बढे । उस वृक्ष के नीचे पहुँचकर उन्होने सोने की एक ईंट देखी । फिर एक ने दूसरे से कहा कि वह फकीर हमे डरा कर दूसरी दिशा मे भेजना चाहता था, जिससे यह ईंट हमे न मिल जाय और वह स्वय ही लौटते समय इसे अपने साथ ले जा सके; पन्तु अब उसकी योजना असफल हो गई है ।

दूसरे ने कहा- "हम धन कमाने के लिए ही अपने गॉव से निकले थे । भाग्य से आज ही यह ईंट मिल गई। अत: हमारा मनोरथ पूर्ण हो गया गया है । अब हमे अपने गॉव को लौट चलना चाहिये । गॉव मे पहुँच कर हम आधी-आधी ईंट दोनो ले लेगें"।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया । दोनों अपने गॉव की ओर रवाना हुए । मार्ग मे एक दूसरा गॉव आया । उसके बाहर एक सघन वृक्ष की छाया मे दोनों ठहर गये । भूख लगी । एक मित्र दूसरे पर ईंट की सुरक्षा का भार डालकर उस गॉव मे भोजनसामग्री लेने पहुँचा । वहीं उसके मन मे विचार आया कि मिठाई मे यदि थोडा-सा जहर मिला दूँ तो उसे खाते ही वह मर जायेगा और सोने की पूरी ईंट मुझे मिल जायेगी । उसने वैसा ही किया । सामग्री लेकर उस वृक्ष के समीप लौट आया ।

अब जल की जरुरत थी । मित्र ने कहा- "तुम खाना शुरु करो । मे अभी पास के कूँए से लोटे मे जल भर लाता हूँ ।"

ऐसा कहते ही वह मित्र जल भरकर लाने के बहाने लोटा-डोर उठाकर कूँए की ओर चल पडा ।

उधर वृक्ष के पास बैठे मित्र के भी मन मे पाप आ गया । उसने सोचा कि यदि मै उस कूँए मे ही मित्र को धकेल दू तो पूरी ईंट पर मेरा अधिकार हो जायेगा । फलस्वरुप वह ईंट वहीं छोडकर उठा और भागता हुआ कूँए पर जा पहुँचा । बोला :- "मित्र ! तुम भोजन-सामग्री लेकर आये और तत्काल पानी लेने चले गये ? तुम्हे तो आराम की जरुरत है । लाओ, पानी मे खींच दू ।"

ऐसा कहते हुए उसे कूँए मे धक्का देकर गिरा दिया । लौटकर मिठाई खाई तो जहर के प्रभाव से वह खुद भी चल बसा । थोडी देर बाद जब फकीर लौटकर उसी रास्ते से गुजरा और उसने पेड के नीचे का दृश्य देखा तो सहसा बोल उठा :- "सचमुच यह ईंट मानवमारक हे !" फकीर फिर वहॉ से भाग खडा हुआ ।

अपनी सन्तान के लिए धन का सग्रह करते समय मनुष्य ऐसा नहीं सोच पाता, जेसा एक कवि ने कहा है :-

"पूत सपूत तो का धन सचय ?
पूत कपूत तो का धन सचय ?"

यदि पुत्र सुपुत्र है तो वह स्वय कमा लेगा और कुपुत्र हे तो सचित धन को भी उडा देगा- दोनों दशाओं मे धन का सचय व्यर्थ है ।

पुत्र ही क्यो ? सारे कुटुम्बी लोग अपनी कायारुप कम्पनी के शेयरहोल्डर्स है । काया से उत्पन्न धन का लाभ तो सब उठाते है; परन्तु सजा अकेले शेठ आत्माराम को भोगनी पड़ती है । डाकू रत्नाकर को जब महर्षियो के द्वारा यह बात समझ मे आ गई तब हत्या, लूटपाट आदि छोडकर वह तपस्या मे लीन हो गया और महर्षि वाल्मीकि के नाम से विख्यात हुआ ।

अनेक कष्ट सह कर प्राप्त धन का उपयोग मनुष्य कामभोग मे करता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ है । इनमे अर्थ-काम की एक जोडी है और धर्म-मोक्ष की दूसरी । पहली जोडी जीव को ससार मे भटकाती है और दूसरी उससे मुक्त करती है । निन्यानवे प्रतिशत ससारी जीव पहली जोडी के ही चक्कर मे पडे रहते है । उस चक्कर से ऊपर नहीं उठ पाते ।

ससार का मार्ग प्रेयोमार्ग है और मुक्ति का मार्ग श्रेयोमार्ग । जिनके विवेकलोचन बन्द रहते है, वे अदूरदर्शी प्राणी प्रेयोमार्ग पर ही दौडते रहा करते है ।

अर्थ के प्रति अरुचि हो जाय तो उसे परोपकार मे लगा सकते है; परन्तु काम के प्रति अरुचि सहज नहीं होती । वर्षो तक काम अपनी ओर प्राणियों को आकर्षित करता रहता है । तपस्या के कारण शान्त दिखाई देनेवाला काम भी कब विराट् रुप धारण कर लेगा ? इसका कोई भरोसा नहीं ।

पर्वत की एकान्त कन्दरा मे बैठे हुए घोर तपस्वी रथनेमी की दृष्टि ज्यो ही राजुल नामक निर्वसना साध्वी पर पडी, त्यों ही उनके मन में कामाग्नि प्रज्वलित हो गई । गिडगिडाकर वे उस साध्वी से भोगयाचना करने लगे ।

अखण्ड शीलव्रतधारिणी महासती राजुल ने प्रतिबोध देते हुए कहा :- "हे मुनिराज । राज्य के साथ ही आपने समस्त काम-भोगो का भी त्याग कर दिया था । कोई दाता कभी दत्त वस्तु को दुबारा ग्रहण करना नहीं चाहता । व्यक्त वस्तु को पुनः प्राप्त करने की इच्छा तो वमन की चाह के सामने अवाछनीय - निन्दनीय है । आप जैसे धर्मात्मा तपस्वी को ऐसा निन्दनीय कार्य शोभा नही देता ।"

इससे उनकी कामाग्नि शात हो गई और यथोचित प्रायश्चित लेकर वे पुनः तपस्या मे लीन हो गये

वह काम ही था, जिसने महर्षि विश्वामित्र जैसे तपस्वी को उर्वशी पर मोहित करके निस्तेज बना दिया था ।

यही हाल सूत और उपसूत का हुआ । ये दोनों घनिष्ट मित्र तपस्या के द्वारा शक्तिशाली बनकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों को अपने चरणों मे झुकाना चाहते थे । दोनों मिलकर २२ (बाईस) योद्धाओं के बराबर सशक्त हो जाते थे । यह बात विष्णु को ज्ञात हो गई । उन्होंने मोहिनी रुप मे प्रकट होकर नृत्य के द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किये । तपस्या और साधना भूलकर दोनों तपस्वी उस मोहिनी पर मुग्ध हो गये । मोहिनी ने कहा कि तुम दोनो मे से जो अधिक बलवान् होगा, मे उसी का वरण करुँगी । अधिक बल किसका है ? इसका निर्णय युद्ध के द्वारा ही हो सकता था । फलस्वरुप दोनो आपस मे युद्ध करने लगे । अन्त मे एक की मृत्यु हो गई । शक्ति बाईस से घटकर दो के बराबर रह गई । इससे ब्रह्मा विष्णु-महेश पराजय से बच गये । ऐसा हे भयकर काम !

अर्थ और काम ये दोनों पुरुषार्थ धर्म और मोक्ष के बीच मे रक्खे गये हे- यह बात विशेष ध्यान देने योग्य हे । अर्थ और काम पर धर्म से अकुश रक्खा जा सकता हे ।

ईमानदारी और मेहनत से धन कमाया जाय तथा उसका उपयोग परोपकार मे किया जाय तो अर्थ अपने वश मे रहेगा । इसी प्रकार कामनाओ को ऊर्ध्वगामी बनाया जाय अर्थात् कामिनी से माता पर, माता से गुरु पर और गुरु से प्रभु पर उन्हे ले जाया जाय तो वे पवित्र होगी और इस तरह "काम" पर धर्म का अकुश रहेगा ।

धर्म से यह लोक भी सुधरता हे और परलोक भी । धर्म से विचार और विवेक पेदा होता हे । अर्थ और काम के सर्वोच्च आसन पर बिराजमान चक्रवर्ती महाराज भरत को धर्म ने ही विरक्त बनाया था- सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनाया था - मोक्ष दिलाया था, इसी लिए चार पुरुषार्थो मे धर्म का स्थान सर्वप्रथम रक्खा गया हे ।

यदि आप भोजन भी प्रभु की आज्ञानुसार करेगे तो वह आपका भोजन भी काम पुरुषार्थ कहलाएगा अन्यथा, काम कहलाएगा ।

निर्मल मन

आज मानव स्वय अपना मूल्य बदल रहा है । वह मानवता से नहीं, साधनसामग्री से ही किसी मानव का मूल्यांकन करता है । अकबर इलाहाबादी ने कहा था :-

नहीं कुछ इसकी पुरसिश
उल्फते अल्लाह कितनी है
सभी यह पूछते है,
आपकी तनख्वाह कितनी है ॥

ईश्वर मे आपकी भक्ति कितनी है ? यह कोई नहीं पूछता । इसके बदले सब यहीं पूछते हैं कि आपका वेतन क्या है ? वेतन के आधार पर ही आपका सम्मान किया जाता है ।

लोग भूल जाते हैं कि साधन सामग्री का मालिक मनुष्य है; इसलिए मनुष्य का ही महत्त्व अधिक है । वह वस्तु के आसपास न घुमकर वस्तुओं को ही अपने आसपास घुमानेवाला केन्द्र है ।

आधुनिक युग मे मशीनें जितनी मँहँगी हैं, मनुष्य उतने ही सस्ते है । साधनसामग्री ही सर्वत्र सब के सिर चढ़कर बोलती है । मनुष्य साधनों (मशीनों) का मालिक न रहकर गुलाम बन गया है । जो लोग कार मे बैठकर यहाँ व्याख्यान सुनने आते है, उनकी कार कभी बेकार हो जाय तो उस दिन व्याख्यान की भी छुट्टी हो जाय । व्याख्यान लक्ष्य है, कार नहीं । कार तो केवल साधन है । हृदय में रही हुई शास्त्र श्रवण की भावना ही श्रावक की शोभा बढ़ाती है, उसकी कार नहीं ।

यह बात वही समझ सकता है, जिसके जीवन मे धर्म पुरुषार्थ हो । वह व्यक्ति यशाशक्ति हिंसा से दूर रहता है । अहिंसा को वह परम धर्म मानता है । मांसाहार के विषय मे तो धार्मिक व्यक्ति कभी विचार तक नहीं कर सकता ।

फिर भी हैं कुछ लोग, जो धर्मस्थानों में जाते हैं - व्याख्यान भी सुनते हैं - सामायिक आदि क्रियाएँ भी करते है; परन्तु गुपचुप मांसाहार कर लेते है । एसे लोगों मे से कुछ फैशन के रुपमें मांसाहारियों से मित्रता निभाने के लिए । कई लोग इस भ्रम के शिकार होकर मांसभोजी बन जाते हैं कि उसके शरीर मे शक्ति बढेगी - आयु लम्बी होगी; परन्तु वे भूल जाते है कि शाकाहारी नियमित भोजन से सौ वर्षो तक आसानी से जिया जा सकता है । मांसाहारी का जीवन छोटा और क्रूर होने से नीरस होता है ।

कहा गया हे :-

"पुरुषा वै शतायुद्र।।"

(पुरुष सौ वरस तक जीवित रहता हे ।)

भारतीय सभ्यता और सस्कृति ही इस लम्बी आयु का प्रमुख कारण थी । असामयिक मृत्यु को अशुभ माना जाता था । विषय-कषाय से रहित शान्त जीवन ही आदर्श था ।

आज कैसा है ? आज का जीवन आधि व्याधि-उपाधि से लदा हे । चिन्ता चिता की तरह जलाती हे- रोग आग की तरह झुलसाते है और अन्य कष्टो का भय आयु को घटाता है

भय पर जय पाने के लिए हमे "अभयदयाण" (अभयदाता) परमेश्वर की शरण मे जाना पडेगा । उससे मानसिक और शारीरिक दोनो तरह का स्वास्थ्य प्राप्त होगा ।

विषय प्राप्ति की चिन्ता से ऊपर उठकर हमे प्रभु के स्वरुप का चिन्तन करना हे । चिन्तन मे विवेक, विनय, निर्भयता और प्रसन्नता का प्रकाश हे, जो आयु को लम्बी बनाता है ।

पुण्य के द्वारा मनुष्य भव मे पूर्णआयु भोगी जाती है ।

मन सहित पाँचों इन्द्रियों मे जो पटुता हे, उसे हम कटुता मे परिवर्तित न होने दे- प्राप्त पटुता के लिए प्रबल पुण्य का आभार माने और इन्द्रियों की तथा मन की पवित्रता टिकाये रक्खे तो निश्चय ही हमारा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य विकसित और विलसित होगा ।

वेसे देखा जाय तो शरीर का स्वास्थ्य मन के स्वास्थ्य पर अवलम्बित है । कहा भी हे किसी ने : - "जिसका मन साफ हे, उसका जीवन स्वर्ग हे और जिसका मन मैला हे, उसका जीवन नरक ।"

मन मैला होता है- कषाय से । कषाय चार हे- क्रोध, मान, माया और लोभ । यहाँ मान का अर्थ अभिमान या घमण्ड है । माया का अर्थ हे- छल । क्रोध और लोभ का अर्थ स्पष्ट हे - सव लोग समझते हे । इन चारो कषायो से रहित मन निर्मल होगा, परन्तु निर्मलता ही पर्याप्त नहीं हे । निर्मल जल भी यदि उष्ण हो- खारा हो- दुर्गन्धित हो तो पीने योग्य नहीं माना जाता । निर्मलता के साथ शीतलता, मधुरता और सुगन्ध भी देखी जाती हे ।

उसी प्रकार निर्मल मन मे (कषायो से अकलुषित अन्त: कारण मे) मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य- इन चार भावो के दर्शन किये जाते हे :-

"मैत्री प्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि
सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ।

- तत्त्वार्थसूत्रम् ७/६

मैत्री प्रत्येक सत्त्व (प्राणि) के साथ होनी चाहिए । अन्त: करण से निरन्तर "मित्ती मे सव्वभूएसु" (मेरी समस्त प्राणियों से मित्रता है) ऐसी ध्वनि निकलती रहनी चाहिए । इससे हमारा व्यवहार अहिसामय प्रेममय बनेगा ।

प्रमोद (हर्ष) अपने से अधिक गुणियो के प्रति होना चाहिए । साधारणत: लोग अपने से ऊचे लोगो को देखकर ईर्ष्या की आग मे जलने लगते है । इससे वे स्वय अपना ही नुकसान करते है । स्पर्धा (होड) अच्छी होती है, ईर्ष्या बुरी । स्पर्धा मे अपने आपको विकसित करके दूसरों के बराबर पहुँचने या उनसे आगे बढने की भावना होती है; परन्तु ईर्ष्या मे दूसरो को गिराने की दुर्भावना रहती है जिसके अन्त:करण मे प्रमोद होता है, वह अपने से अधिक गुणवानो का आदर करता है - उनसे मिलकर प्रसन्न होता है ।

कारुण्य भाव दु:खियों के प्रति होना चाहिए । किसी को पीडा पाते देखकर हृदय कॉप जाना चाहिए । यही अनुकम्पा है - दया है, जो धर्म का मूल है :-

"दया धर्म का मूल है। पाप मूल अभिमान ।
"तुलसी दया न छोडिये, जब लग घटमे प्राण ।।"

बडे-बडे महात्माओ को करुणासागर कहा जाता है; क्योंकि कारुण्यभाव ने ही उनकी आत्मा को ऊपर उठाया है- महान् बनाया हे ।

चौथा भाव है- माध्यस्थ अथवा तटस्थता । यह अविनेय (अपात्र या अयोग्य) शिष्यो के प्रति रखने योग्य भाव है । जो उपदेश से नहीं सुधरता, वह धीरे-धीरे दुनिया मे कटुत्तर अनुभव पाकर अपने आप सुधर जाता हे; अत: उसके प्रति उपेक्षावृत्ति रखी जानी चाहिये ।

कषायरहित निर्मल मन मे इन चार भावो के विकसित होने पर व्यक्ति अमृतसरोवर मे डुबकी लगाने लगता है । मृत्यु का भय उससे बिदा हो जाता है । वह गाने लगता है :-

"अब हम अमर भये, न मरेगे !"

जिसका मन निर्मल होता हे, उसका तन भी स्वस्थ होता हे । एक प्राचीन घटना के द्वारा इस बात की पुष्टि होती हे ।

हरिभद्र नामक एक विद्वान् ब्राह्मण थे । एक दिन वह कारणवश किसी जिनमन्दिर मे चले गए ।

वहाँ महावीर प्रभुकी प्रतिमा को देखकर व्यग्यपूर्वक हरिभद्र बोल उठे :-

> "वपुरेव तवाचष्टे
> स्पष्ट मिष्टान्नभोजनम् ।
> नहि कोटरसस्थेऽग्नौ
> तरुर्भवतिशाद्वल: ।।"

[हे भगवन् ! आपका शरीर ही कह रहा है कि आप मिठाई खाते रहे है - यह सपष्ट है, क्योकि यदि कोडर मे आग लगी हो (पेट भूखा हो) तो पेड हराभरा नहीं रह सकता ।]

थोडे समय बाद वह याकिनी महत्तरा नाम की साध्वी के सपर्क मे आए । उन्होंने उसे आचार्य महाराज के पास भेजा । उनसे हरिभद्र ने बोध पाया और धीरे-धीरे ससार से विरक्ति होने पर प्रव्रज्या ले ली । अपने गुरुदेव से जेन शास्त्रो का मननपूर्वक अध्ययन किया ।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए हरिभद्र मुनि वर्षो बाद जब उसी नगर मे पधारे और उन्होने उसी मन्दिर मे प्रतिमा के दर्शन किये, तब बोले -

> "वपुरेव तवाचष्टे
> भगवन् ! वीतरागताम् ।
> नहि कोटरसस्थेऽग्नौ
> तरुर्भवति शाद्वल:।।"

[हे भगवन ! आपका (यह हृष्टपुष्ट) शरीर ही आपकी वीतरागता को प्रकट कर रहा है; क्योकि जिस पेड के खोडर मे आग हो, वह हराभरा नही रह सकता ।]

मन मे यदि राग की आग लगी हो तो शरीर भला केसे पुष्ट होगा ?

यही मुनि हरिभद्र आगे चलकर जेनाचार्य श्री हरिभद्रसूरि के नाम से विख्यात हुए और उन्होंने एक हजार चार सौ चवालीस (१४४४) ग्रन्थों की रचना की ।

राग, ममता, मोह, आसक्ति, वासना आदि मन के विकारो को दूर करने की प्रेरणा हमे इस घटना से लेनी है ।

स्वास्थ्य

हिन्दी मे एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है :-

"पहला सुख निरोगी काया"

शरीर रोगो से रहित हो - स्वस्थ हो, यह सबसे बडा सुख है। स्वस्थ शरीर से ही समस्त कार्य सम्पन्न होते है। जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है :-

"शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम् ॥"

(निश्चय ही धर्म का पहला साधन शरीर है।)

धर्म का आचरण शरीर से ही होता है। जिसका शरीर अस्वस्थ है, वह दूसरो की सेवा नही कर सकता। रोगियो का इलाज वही वैद्य कर सकता है, जो स्वय स्वस्थ हो। स्वस्थ व्यक्ति स्वय भी प्रसन्न रहा है और दूसरों की भी प्रसन्नता बढाता है।

एक पाश्चात्य विचारक बीचर ने कहा है :- "शरीर वीणा है, आनन्द सगीत; परन्तु वीणा दुरुस्त हो- यह सब से पहले जरुरी है।"

वीणा का एक भी तार ढीला हो तो उससे अच्छे सगीत के योग्य उत्तम स्वर नही निकल सकते; उसी प्रकार शरीर मे कहीं भी कुछ उपद्रव हो- रोग हो तो हम प्रसन्न नही रह सकते।

भव्य भवन हो, बहुमूल्य फर्नीचर हो, भरा-पूरा परिवार हो, सुशीला पत्नी हो, आज्ञाकारी पुत्र हो, आधुनिकतम भोगोपभोग की सामग्री हो, स्वादिष्ट खाद्य और पेय पदार्थ मौजूद हों; परन्तु अपने शरीर मे यदि एक सौ चार डिग्री बुखार भी मौजूद हो तो सोचिये, क्या होगा? हमे कुछ भी नहीं सुहायगा। यही कारण है कि सभी विचारको ने शारीरिक स्वास्थ्य पर जोर दिया है। करोडो रुपयो से भी स्वास्थ्य को अधिक मूल्यवान् माना है।

शारीरिक स्वास्थ्य से भी पहले मानसिक स्वास्थ्य आवश्यक है, क्योंकि यदि तन तन्दुरस्त न हो तो मन तन्दुरुस्त नहीं रह सकता।

मन मनन करता है, विचार करता है, शरीरको सचालित करता हे। पच महाभूतो से बना हुआ शरीर तो मनकी आज्ञा का पालन करता हे। मन यदि दुःखी हो तो शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। सन्त तुकाराम ने वर्षों पहले कहा था :-

"मन करा रे प्रसन्न
र्वसिद्धीचे साधन ।।"

(सब सिद्धियों के साधन मन को प्रसन्न रखिये)

जेन योगी श्री आनन्दघनजी ने एक बार गाया था :-

"चित्त प्रसन्ने रे पूजनफल कह्यूँ रे
पूजा अखण्डित एह ।।"

उनके अनुसार चितकी प्रसन्नता ही प्रभूकी अखण्ड पूजा हे !

जो व्यक्ति हँसमुख होता हे, वह सदा अनेक मित्रो से घिरा रहता है; क्योकि प्रसन्नता मे चुम्बक की तरह आकर्षण होता हे । इससे विपरीत जो व्यक्ति उदास रहता हे- दूसरों के सामने अपना दुखडा ही सुनाया करता हे- रोया करता हे, उसके मित्र धीरे-धीरे कम होते जाते हे और एक दिन ऐसा आता है कि वह अकेला रह जाता है ।

अब केवल यह सोचना हे कि मन प्रसन्न केसे रखा जाय, विकारों से उसे केसे बचाया जाय और सद्विचारो से उसे केसे भरा जाय ।

दुनिया का जितना नुकशान एटमबमों से हुआ है, उससे अधिक घटिया फिल्मो से हुआ हे - फिल्मी गीतों से हुआ हे; क्योकि इनसे मन विकृत होता हे- विषयो और कषायो से लिप्त होता हे । यही बात बाजारु उपन्यासों के लिए कही जा सकती हे । इन सबसे अपने आपको दूर रखना हे ।

एक सीढी से मनुष्य ऊपर भी चढ सकता हे और नींचे भी उतर सकता हे । मन के द्वारा आप उन्नति भी पा सकते है और अवनति भी । मन से सर्जन भी होता हे और विसर्जन भी ठीक ही कहा गया है :-

"मन एव मनुष्याणाम्
कारण बन्धमोक्षयो: ।।"

(मन ही मनुष्यो के बन्ध और मोक्ष का कारण हे)

प्रतिकूल परिस्थिति यो मे भी विचारक मन निर्मल बना रहता हे । महाराज श्रेणिक ने जेल मे भी विशुद्ध विचारो के द्वारा कर्म-निर्जरा की थी । अनुकूल स्थितियों मे जीने की और प्रतिकूल स्थितियो मे मरने की इच्छा तो सभी करते हे, परन्तु जिसका मन निर्मल होता है, वह न दु:ख मे गबराता हे और न सुख मे घमण्ड करता है । वह तो सुख-दु:ख से ऊपर उठकर निजानन्द मे रमण करता हे, वीतराग का स्मरण करता है ।

प्रभु का स्मरण न करते विषयो का स्मरण करनेवाले की दुर्दशा कैसी होती है - यह जानने के लिए गीता के दो श्लोक देखिये :-

ध्याय तो विषयान्पुसः
सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गत्सञ्जायते काम·
कामात्क्रोधोऽभिजायते ।। २/६२

क्रोधाद् भवति सम्मोहः
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।। २/६३

[पुरुष यदि विषयों का ध्यान करता है तो उससे उनमे आसक्ति हो जाती है । आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति का नाश, उससे बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से उस पुरुष का सर्वनाश (पतन) हो जाता है ।]

सभ्य व्यक्ति जिस प्रकार बिना काम के आदमीयो को भवन मे नहीं आने देता उसी प्रकार व्यर्थ के विचारो को मनमे मत आने दीजिये । भौतिक मनोहर वस्तुओं के प्रति मोह नष्ट हुआ कि आपका दुःख भी गायब हो जायेगा :-

"दुःक्ख हय जस्स न होइ मोहो ।।"

- उत्तराध्ययनसूत्र ३२/८

(जिस मे मोह नहीं होता, उसका दुःख नष्ट हो जाता है ।)

दुःख नष्ट होने पर मन मे प्रसन्नता उत्पन्न होगी । किसका दुःख ? अपना दुःख मिटाने का प्रयास तो सभी प्राणी करते है परन्तु महापुरुष वह है, जो दूसरों के दुःख को भी अपना दुःख समझकर उसे मिटाने का प्रयास करे ।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का उदाहरण इस विषय मे सब से लिए प्रेरणादायक है ।

वे एक दिन घर से निकलकर किसी महत्त्वपूर्ण मीटिग मे शामिल होने जा रहे थे । मार्ग मे एक ओर पल्लव के क़ीचड मे फँसकर बाहर निकलने के लिए छटपटाने वाले एक सूअर पर उनकी नजर पड गई । वे तत्काल उसके समीप जा पहुँचे और खींचकर उसे बाहर निकाल दिया। मन-ही-मन उस मूक पशु ने कितनी शुभकामनाएँ राष्ट्रपति के लिए व्यक्ति की होंगी- इसकी कल्पना कोई दुःखमुक्त व्यक्ति ही कर सकता है ।

सूअर को कीचड से निकालने के प्रयास मे लिकन की पोशाक पर कीचड के छींटे लग गये; परन्तु क्या करते ? अब इतना समय नहीं था कि पुन: घर जाकर पोशाक बदली जा सके । समय पर मीटिग मे पहुँचना जरुरी था । वे तुरन्त कारमे सवार होकर मीटिग मे गये और उन्होंने भाषण भी दिया ।

लोगों ने कीचड से भरी भव्य पोशाक का कारण जब उनसे सेक्रेटरी से पूछकर जाना तो सब सदस्यो की ओर से एक व्यक्तिने खडे होकर उनकी परोपकार परायणता की प्रशसा की; परन्तु राष्ट्रपति ने उसका उत्तर देते हुए कहा :- 'आप व्यर्थ मेरी प्रशसा कर रहे हे । मेने कोई प्रशसनीय कार्य नही किया हे । सूअर को तडपते हुए देखकर मेरे दिल मे जो दु ख हुआ था, उसी दु·ख को मिटाने के लिए मेने उसे बाहर निकाला था !"

राष्ट्रपति अब्राहम लिकन के दिलमे जो दु:ख हुआ था, उसे जेनशास्त्र के शब्द मे अनुकम्पा कहते हे - यही दया हे, जो धर्म की माता हे ।

"धम्मस्स जणणी दया ।।"

दया करने के लिए होती हे, केवल कहने-सुनने के लिए नहीं । विषय कषाय से रहित निर्मल मन मे ऐसी अनूकम्पा आसन जमाती हे ।

करुणा के सरोवर प्रभु महावीर की सौम्य शान्त मुद्रा भी मन मे पवित्र भाव जगा सकती हे । आर्द्रकुमार को पेटी ने से जिन प्रतिमा प्राप्त हुई । इससे पहले उन्होने कभी प्रतिमा के दर्शन नही किये थे । प्रतिमा की शान्त मुद्रा का उनके हृदय पर क्या प्रभाव हुआ और वे किस प्रकार आत्मोद्धार के लिए तत्पर हो गये- सो आप सब जानते हे

निर्मल अन्त.करण मे मेत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावनाओं का अमृतरस भर जाता हे, तब मन अपनी चचलता का त्याग करके धर्म मे स्थिर होता है और निरन्तर प्रसन्न रहता हे :-

प्रसादे सर्व दु:खाना
हानिरस्योपजायते ।
पसन्नचेतसो ह्याशु
बुद्धि: पर्यवतिष्ठते ।।

(पसन्न मन मे समस्त दु ख समाप्त हो जाते हे । जिसका चित्त प्रसन्न रहता हे, उसमे शीघ्र बुद्धि का निवास होता हे ।)

गीता के इस श्लोक से मालूम होता हे कि बुद्धिमत्ता के लिए भी मानसिक प्रसन्नता आवश्यक हे । प्रसन्नता से शारीरिक और मानसिक-दोनो पकार का स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता हे ।

मानवभव

चत्तारि परमगाणि
दुल्लहाणि य जन्तुणो ।
माणुसत्त सुई सद्धा
सजमम्मि य वीरिय ।।

[मनुष्यभव, श्रुति, श्रद्धा और संयम मे पराक्रम- ये चारो अग (गुण) प्राणियो मे अत्यन्त दुर्लभ है ।]

यहाँ प्रभु महावीर ने जिन चार गुणो को दुर्लभ बताया है, उनमे पहला है- मानवभव । आज इसी पर थोडा विचार करे ।

चौरासी लाख जीवयोनियो मे भटकते हुए प्राणी को बडी मुश्किलसे मनुष्य-भव प्राप्त होता है; परन्तु हर वह प्राणी, जिसे मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है, मानव कहलाने का अधिकारी नही है । सच्चा मानव वही है, जिसमे मानवता हो- मानवोचित सद्गुणो का निवास हो । सद्गुणो से रहित मानवशरीर वैसा ही दिखाई देता है, जैसा जलरहित (सूखा) कोई सरोवर !

दीवार चुननेवाला मजदूर उपर उठता है और कुआ खोदनेवाला नीचे जाता है । श्रम तो दोनो करते है; फिर भी परिणाम भिन्न भिन्न है । ऐसा क्यो ? दीवार चुनने का काम कठित है- उसमे बुद्धि का अधिक उपयोग करना पडता है । इससे विपरीत खड्डा खोदने का काम सरल है । इसीलिए एक प्रकाश की ओर- आकाश की दिशा मे बढता है और दूसरा अन्धकार की ओर-नरक की दिशा में ।

ठीक इसी प्रकार मन-वचन-काया का दुरुपयोग करने वाला दानवता की दिशा मे बढता है और उनका सदुपयोग करने वाला मानवभवकी ।

ससार मे रहकर भी जल मे कमल की तरह साधु निर्लिप्त रहता है । कछुए के समान अपनी इन्द्रियो को सकुचित करता है । विषय-कषायों से अपने मन को दूषित नहीं करता । सब जीवों के कल्याण की कामना करता है ।

विद्वान् भी दुर्जन हो तो उससे दूर रहने की सलाह नीतिकार देते है :-

दुर्जनःपरिहर्त्तव्यो
विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्

मणिना भूषितः सर्पः
किमसौ न भयकरः ?

(विद्या से सुशोभित दुर्जन का भी त्याग कर देना चाहिये । क्या मणि से अलकृत साँप भयकर नही होता ?)

साँप तो जिसे डसता हे, वही मरता है, परन्तु दुर्जन डसता किसी और को है तथा मरता कोई और है । इसका तात्पर्य यह हे कि दुर्जन झूठी शिकायत (चुगली) करके किसी को भी पिटवा देता हे । दुर्जन के मुँह से सदा कटुक कठोर शुद्ध ही प्रवाहित होते है । सज्जन ऐसे शद्वो से अपने मुह को कलुषित नहीं करता ।

किसी पण्डित ने एक बार कहा था :- "आप मुझे सौ गालियाँ देकर देख ले, गुस्सा नही आयेगा ।"

यह सुनकर महामना मदनमोहन मालवीय जी ने उत्तर दिया :- "पण्डितजी ! आपके गुस्से की परख होने से पहले मेरी जीभ तो गन्दी हो ही जायेगी ! मे एसी भूल क्यों करूँ ?"

हमे भी अपनी जीभ को गालियो की गन्दगी से बचाना हे । हो सकता हे, हम किसी की प्रशसा न कर सकें; परन्तु निन्दा चुगली-गाली से तो बचे रह सकते है ! इतना ही काफी हे । रहीम साहब ने कहा था :-

'रहिमन' जिह्वा बावरी
कहिगे सरग-पतार ।
आपु तो कहि भीतर रही,
जूती खात कपार ।।

ऐसी ही दुर्दशा होती हे- यदि हम वाणी का सयम न रक्खे । प्रभु महावीर "देवानुप्रिय" या "महानुभाव" कहकर ही सब को सम्बोधित करते थे ।

मानवता के लिए वाणी का सयम बहुत जरूरी हे । जेन शास्त्रोंमे मानवभव को बहु ऊचा स्थान दिया गया हे । सबसे ऊचा स्थान मोक्ष (सिद्धशिला) हे । वहाँ पहुंचने का अधिकार केवल मनुष्य का प्राप्त हे, अन्य किसी प्राणी को नहीं । अनुत्तर देवलोक के देवो को भी मोक्ष पाने के लिए मनुष्यशरीर धारण करना पडता हे । मनुष्य ही सर्वज्ञ हो सकता हे- चरमशरीरी हो सकता है; और कोई जीव नहीं ।

एक दिन सिकन्दर ने अपने एक सज्जन सेनापति को उसके ऊचे पद से हटा कर देखा कि वह प्रसन्न रहता हे । कारण पूछने पर उसने

बताया :- "मेरा अनुभव मेरे साथ है; इसलिए सभी वर्तमान सेनापति मेरी सलाह लेने आते है। पहले साधारण सैनिक मेरे समीप आने की हिम्मत नही करता था। उच्च पद के कारण मुझसे डरता था; परन्तु अब सभी सैनिक समय समय पर आवश्यक सलाह लेने के लिए निस्सकोच और निर्भय होकर मेरे पास चले आते है। मेरे प्रति सम्मान मे कोई कमी नहीं आई है। यही मेरी प्रसन्नता का रहस्य है।"

सिकन्दर :- "फिर भी उच्च पद छूट जाने से कुछ दु:ख तो आपको होता ही होगा न ?"

सेनापति :- "जी नहीं, मुझे कोई दु:ख नहीं है। वेतन तो हाथ का मैल है। अधिक मिलेगा, अधिक खर्च होगा। कम मिलेगा, कम खर्च होगा। पद पर रहकर भी जो आदमी रिश्वत लेता है- अपने स्वार्थ के लिए लोगो को परेशान करता है - कर्तव्य का निर्वाह नही करता, उसे सम्मान नही मिल सकता। सम्मान की प्राप्ति के लिए पद नहीं, मानवता आवश्यक है।"

इस उत्तर से सन्तुष्ट होकर सिकन्दर ने उसे फिर से सेनापति पद पर नियुक्त कर दिया।

सेनापति ने मानवता के महत्त्व को समझा था और उसे आत्मसात् किया था; इसीलिए वह ऊची-नीची हर स्थिति मे हॅसमुख रहता था।

जिसमे मानवता होती है, वह गुस्सा नहीं करता। यदि गुस्सा आ भी जाय तो वह किसी का बुरा नही सोचता। यदि कोई बुरा विचार उठ भी आय तो उसे मुहपर नही लाता (बुरी बात मुह से बोलता नही) और यदि असावधानी वश बुरी बात मुह से कभी निकल जाय तो लज्जित होकर सिर झुका लेता है। यह भाव इस प्राकृत भाषा मे रचित आर्या छन्दमे किसी ने बहुत ही सुन्दर ढग से प्रकट कर दिया है। देखिये :-

"सुयणो न कुप्पइञ्विअ
अह कुप्पइ विप्पिय न चिन्तेई।
अह चिन्तेइ न जम्पइ
अह जम्पइ लज्जिओ हवइ ॥"

जिसमे विद्या होती है, उसमे मानवता भी होगी ही ऐसा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। किसी शायर ने कहा है :-

[1]आदमीयत और[2] शै है
[3]इल्म है कुछ और चीज।

कितना तोते को पढाया
पर[४] वो[५] है[६] वॉ ही रहा !

तोता भले ही मुखसे "राम राम" बोलता रहे, किन्तु वह नहीं जानता कि राम कौन थे और उनमे कौण-कौण से गुण थे - इसलिए वह उन गुणों का पालन भी नहीं कर सकता। गुणों को जीवन मे उतारे बिना कोई आदमी नहीं हो सकता :-

"मानता हूँ— हों फरिश्ते शेखजी
आदमी होना मगर दुश्वार है !"

कोई व्यक्ति फरिश्ता (देव) हो सकता है, परन्तु आदमी (मानव) होना बहुत कठिन है। इस शेर मे मनुष्यता को ही दुर्लभ बताया गया हे। मानवता हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिये।

एक विद्यालय मे निरीक्षक महोदय पहुँचे। विद्यालय की सर्वोच्च कक्षा मे जाकर छात्रों के सामने एक प्रश्न रक्खा :- "तुम विद्यालय मे पढने क्यो आते हो ?"

इस प्रश्न का सब छात्रो से लिखित उत्तर मॉगा गया। प्रत्येक छात्र ने उत्तर लिखकर अपना कागज निरीक्षक महोदय को दे दिया।

प्राप्त उत्तरो मे से कुछ ये थे :-

"इस प्रश्न पर विचार करने के लिए अधिक समय चाहिये।"

"इस प्रश्न का उत्तर हमारी पाठ्यपुस्तक मे कही नही मिलत,"

"यदि आप इसका उत्तर जानते है तो हमसे क्यो पूछते हे ?"

"मै आपके समान निरीक्षक बनना चाहता हूँ।"

"मै डाक्टर बनना चाहता हूँ।"

"मै इजीनियर बनना चाहता हूँ।"

"मै बेरिस्टर बनना चाहता हूँ।"

"मै मिनिस्टर बनना चाहता हूँ।"

"मै मास्टर बनना चाहता हूँ।"

---

१ मानवता। ३ विद्या ५ पशुता वाला प्राणी
२ वस्तु। ४ वह

"मै मनुष्य बनना चाहता हूँ और मनुष्यता क्या चीज है ? उसे समझने के लिए विद्यालय मे पढने आता हूँ ।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्तिम उत्तर को सर्व श्रेष्ठ माना गया और जिसने वह उत्तर दिया था, उसे पुरस्कार भी दिया गया ।

"विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।"

(विद्या से अमृत का भोग किया जाता है ।)

वह अमृत मानवता ही है !

अहंकार और ममता

अहकार और ममता मोहराजा के दो महामन्त्री है । जहाँ नमस्कार हे, वहाँ साधना हे और जहाँ अहकार है, वहाँ विराधना हे । इसी प्रकार समता से साधना और ममता से विराधना का सम्बन्ध हे ।

जीवन रूपी दूध को अहकार की फिटकरी का टुकडा फाड देता हे। इससे विपरीत नमस्कार या विनयधर्म रूपी मिश्री का टुकडा जीवनरूपी दूध को मधुर बना देता हे ।

बाहुबली ने दुष्कर तप किया था, किन्तु मन मे अहकार था, इसलिए केवलज्ञान प्राप्त न हो सका । फिर ब्राह्मी और सुन्दरी नामक अपनी साध्वी बहिनो से जब यह सुना .-

"वीरा ! म्हारा गज थकी उतरो
गज चढयाँ केवल न होय ।।"

(हे मेरे भाई ! हाथी से नीचे उतरो; क्योंकि जो हाथी पर बैठा रहता हे, उसे केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।)

तब तपस्यारत महामुनि को यह समझ मे आया कि मै जिस हाथी पर सवार हूँ, वह सूँडवाला पशु नही, किन्तु अहकार हे, जो मेरे केवलज्ञान मे बाधक हे । मेरी इस तपस्या के मूल मे ही अहकार हे । म अपने पूर्वदीक्षित भाइयो को वन्दन करने से बचने के लिए तपस्या के द्वारा केवलज्ञान पाने के प्रयत्न मे लगा था । ये साध्वी बहिने ठीक ही कह रही हे । मुझे अहकाररूपी हाथी से नीचे उतरना ही होगा ।

ऐसा सोचकर अपने दीक्षित लघु भ्राताओ को वन्दन करने के लिए ज्यो ही उन्होंने कदम बढाया कि तत्काल उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया ।

इसी प्रकार गणधर भगवत गौतमस्वामी के केवलज्ञान मे ममता बाधक थी । उनमे अहकार तो बिल्कुल नहीं था; परन्तु प्रभु महावीर के प्रति राग था - तीव्र अनुराग था - ममता थी । यही कारण हे कि प्रभु का निर्वाण होने के बाद वे रोने लगे । फिर चिन्तनने पलटा खाया । रुदन की व्यर्थता समझ मे आई । परमात्मा की वीतरागता की पहिचान हुई और तब केवलज्ञानी बने ।

आत्माकी भी पहिचान न होने से कैसी दुर्दशा होती हे ? एक दृष्टान्त द्वारा यह बात स्पष्ट होगी ।

एक बुढिया शहर से अपने गॉवकी ओर जा रही थी । चलते-चलते शाम होने लगी । तभी सामने से आनेवाले एक मुसाफिर ने उससे कहा- माताजी ! लौट चलिये । आगे घोर जगल है । दिन अस्त होने पर जगल मे रात का राजा आपको मार डालेगा ।"

बुढिया तो उस मुसाफिर के साथ पास के एक अन्य गॉव मे चली गई; परन्तु मुसाफिर की कही हुई बात वहीं पास की झाडी मे छिपा हुआ एक सिह सुन रहा था । वह सोचने लगा कि जगल का राजा तो मै ही हूँ, पर यह "रात का राजा" कौन है ? पता नही, वह कैसा है- कितना बलवान् है ।

कुछ ही समय बाद अपने खोये हुए एक गधे को ढूढता हुआ कोई कुम्भकार वहाँ आ पहुँचा । अधेरे के कारण सिह को गधा समझकर उसने उसकी पीठपर लाठी का एक प्रहार किया । सिह ने समझा कि यही हे रातका राजा ! अन्यथा मुझपर प्रहार करने का साहस कौन कर सकता है ?

फिर कुम्भकार सिह को घसीटकर अपने घर के बाडे मे ले गया और उसे अपने अन्य गधो के साथ खूटे से बॉध दिया । प्रात:काल कुम्भकार की पत्नी ने जब सिह को देखा तो उसके मुह से चीख निकल गई । चीख से जागकर कुम्भकार भी वहाँ आया और गधो के टोले मे सिह को देखकर थर थर कॉपने लगा ।

सिह को समझमे आ गया कि जगल का राजा भी मै ही हूँ और रातका राजा भी । बन्धन तुडाकर वह पुन: जगल मे चला गया । स्वतन्त्र हो गया ।

हमारी आत्मा भी गधों के टोले मे बंधे हुए सिह के समान हे उसमे प्रभु महावीर की तरह ही अनन्त ज्ञान-दर्शन पाने की शक्ति है; परन्तु हम ससारी जीवों के साथ अनादिकाल से रहने के कारण अपने स्वरूप को नहीं पहिचानते । यही दु:ख का प्रमुख कारण है ।

आत्मा की पहिचान से भ्रम का परदा हट जाता है ।

मनुष्य भव साधना के लिए मिला है- लोक और परलोक सुधारने के लिए मिला है, बिगाडने के लिए नहीं । अहकार और ममता के कारण पाप करते समय प्राणी यह भूल जाता है कि मे अकेला आया था अकेला ही जानेवाला हूँ :-

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने ।

देहश्चिताया परलोक मार्गे
कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

[धन जमीन मे (पहले बेक नहीं थे । धन जमीन मे गाड दिया जाता था ।), पशु बाडे मे, पत्नी घरके दरवाजे तक, कुटुम्बी श्मशान तक और शरीर चिता तक ही अपने साथ रहता हे । उसके बाद कर्मो की गठरी उठा कर जीव अकेला ही जाता हे । दूसरा कोई भी उसके साथ नहीं जाता ।]

मोहान्ध बिल्वमगल मुर्दे को तेरता हुआ लकडी का पटिया समझता हे और विषधर साँप को रस्सी ! वह भूल जाता है कि जिस रूप रग और यौवन पर मे आसक्त हूँ, वह नश्वर हे ।

अहकार रूपी वृक्ष पर ममता की हरियाली छाई रहती हे और दुर्गुण रूपी विविध पक्षी वहाँ आकर अपने घोंसले बना लेते हे ।

ऐसी स्थिति मे सद्गुरूदेव का सत्सग ही सद्गुणों की सुगन्ध से जीवन को सुवासित कर सकता हे ममता के स्थान पर समता की स्थापना कर सकता हे अहकार के स्थान पर नमस्कार महामन्त्र को प्रतिष्ठित कर सकता हे ।

चातुर्मास मे जिस प्रकार कृषक धरती की खेती करता हे, उसी प्रकार धार्मिक जीव आत्मा की । आत्मा को कोमल बनाने के लिए वह सामायिक करता हे, जो साधना का प्रथम सोपान हे ।

स्थिर दीपशिखा सुन्दर लगती हे । स्थिर मनोवृत्ति भी उससे कम सुन्दर नहीं होती । मन को शान्त और स्थिर करने के लिए सामायिक की जाती हे ।

समुद्रतल मे डुबकी लगाकर गोताखोर जिस प्रकार मोती प्राप्त करता हे, उसी प्रकार साधक सामायिक द्वारा अन्त.करण मे डुबकी लगाकर शुद्ध आत्माको प्राप्त करता हे । मोती पाने पर जितना आनन्द गोताखोर को मिलता हे, उससे अनत गुना अधिक आनन्द आत्मदर्शन से होता हे ।

सामायिक का साधक चरबीवाले वस्त्र, कॉडलीवर आईल, क्रुम के बूट आदि हिसाजन्य साधनो का उपयोग नहीं करता । उसका आदर्श होता हे – "साधा जीवन उच्च विचार !" वह शरीरको नहीं, आत्मा को ही अलकृत करने का ध्यान रखता हे । उसके मुखमडल पर ब्रह्मचर्य का तेज होता हे । उसके जीवन मे पवित्रता की सुगन्ध होती हे । कारुण्य भाव उसके अन्तस्थल से छलकता रहता हे ।

सामायिक मे बेठे हुए महाराज कुमारपाल को एक मकोडे ने काट लिया । चमडी मे मकोडा अपनी अगली टाँग इस तरह चुभो देता हे कि

यदि उसे हटाया जाय तो वह टूट जाता है- मर जाता है । करुणार्द्र कुमारपाल ने उसके दशकी वेदना सह ली । इतना ही नहीं, बल्कि माससहित अपने शरीर की वह चमडी काट कर अलग कर दी । इस प्रकार उसे खुराक सहित अभयदान किया ।

चरमतीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने एक बार पूणिया श्रावक की सामायिक के फल की प्रशसा की थी । महाराज श्रेणिक उस श्रावक की एक सामायिक का फल पाने के लिए अपना समस्त राज्यवैभव छोडनेको तैयार हो गये थे, परन्तु उन्हे सफलता नहीं मिली । इससे जाना जा सकता है कि सामायिक का स्थान कितना ऊचा है

कष्टो को जो शान्तिपूर्वक सहन करता है, वही कुटिल कर्मो का दहन कर सकता है । बाईस परीस हो और विविध उपसर्गो को शान्तिपूर्वक सहन करके ही प्रभु महावीर कर्म निर्जरा के द्वारा आत्मशुद्धि कर सके केवलज्ञान पा सके मोक्ष मे जा सके ।

पृथ्वी सहन करती है, ईसीलिए फसले पैदा करने मे सफल होती है । माता सहती है, इसीलिए पूजनीया मानी जाती है । पत्थर सहता हे (छैनी के प्रहार), इसीलिए प्रतिमा के रूप मे अर्चित होता है । साधु सहता है; इसीलिए सम्माननीय बनता है ।

महात्मा सुकरात की पत्नी झेथापी बडी कर्कशा थी । एक दिन क्रुद्ध होकर वह बकझक करने लगी । उसके शब्दों पर उपेक्षा करके महात्माजी एक पुस्तक पढते रहे । इससे वह और अधिक चिड गई । थोडी देर बाद पुस्तक रखकर जब वे घर से वाहर निकलने लगे, तभी रसोई घर का गन्दा पानीं बाल्टी मे भर कर पत्नी ने उनके शरीर पर उडेल दिया ।

इस पर महात्मा सुकरात ने हँस कर कहा :- “बादल पहले तो गरजे और फिर बरस पड़े !”

इससे पत्नी का गुस्सा शान्त हो गया और वह भी खिलाकर हँस पडी। यह था सहनशीलता का चमत्कार !

कहने का तात्पर्य यह है कि नमस्कार के द्वारा अहकार पर और सामायिक से प्राप्त सहिष्णुता या समता के द्वारा ममता पर विजय पाकर ही साधक अपनी आध्यात्मिक साधना मे सफल होता है; अन्यथा नही ।

कुछ पर्व

प्रभु ऋषभदेव को बारह महीनों तक शुद्ध आहार नहीं मिला । धैर्य के साथ क्षुधा परीषह वे सहते रहे । इस तपस्या से कर्मक्षय का सहज अवसर मिला रहा है- यह मानकर मन-ही-मन वे सन्तोषामृत का पान करते रहे ।

अन्तमे वैशाख शुक्ला द्वितीया की रात्रि को देखे एक स्वप्न के अनुसार श्रेयासकुमार ने तृतीया को गन्ने के रस से उन्हे पारणा कराया । तब से वर्षीतप के पारणे इसी अक्षय तृतीया के दिन होते हे । वर्षी तप धैर्य और समता का रसायन है । तप से शरीर भले ही क्षीण हो जाय, परन्तु आध्यात्मिक गुणों मे वृद्धि के कारण मुखमण्डल पर तेजस्विता छा जाती हे ।

भगवान् महावीर ने अपने जीवन के अन्तिम सोलह प्रहर तक अखण्ड देशना दी । वह देशना उत्तराध्ययनसूत्र के छत्तीस अध्ययनो के रूप मे आज भी हमारे सामने मौजूद हे ।

ब्राह्मण देवशर्मा को प्रतिबोध देने के लिए प्रभु ने अन्तिम समय मे अपने प्रिय शिष्य गौतम को भेज दिए । आज्ञा, विनय और अनुशासन के मूर्तरूप गौतमस्वामी चले गये और इधर दीपक का निर्वाण हो गया । ज्ञान ज्योति बुझने पर लोगोंने दीपक प्रज्वलित किये । घरो मे दीपक की कतारे लगा दी; इसीलिए वह दीपावली कहलाई ।

प्रभु ने निर्वाण पाया- ऐसा सुनते ही गौतम स्वामी छोटे बच्चे की तरह रोने लगे । उनके आँसुओं से उनके मन का राग धुलने लगा । रातभर चिन्तन करते रहे और प्रात: काल होते ही उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया । इस प्रकार सर्वत्र हर्ष छा गया । महावीर स्वामी के बाद गौतमस्वामी के रूप मे उस दिन समाज को नया धर्मोपदेशक मिल गया था ।

यद्यपि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना के लिए कोई निश्चित तिथि नहीं होती, निरन्तर इन गुणों की साधना की जा सकती हे; फिर भी श्रुतज्ञान की आराधना के लिए आचार्यों ने वर्ष मे एक तिथि निर्धारित कर दी हे, जिसे "ज्ञानपञ्चमी" कहते हे ।

उस दिन तीन प्रकार से ज्ञान की पूजा की जाती हे :-

(क) ज्ञान के साधक की पूजा

(ख) ज्ञान के साधनों की पूजा

(ग) ज्ञान की पूजा

ज्ञानियो को वन्दन करना पहला प्रकार है । इससे हमे भी ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है ।

ज्ञान धर्मग्रन्थो के रूप मे हमारे पास सदा उपलब्ध रहता है । गुरुदेव तो विहार करके अन्यत्र चले जाते है; परन्तु ग्रन्थ कही नहीं जाते । वे ज्ञानप्राप्ति के साधन है। उन्हे सभालना उन पर जिल्द चढाना, उन्हे सुरक्षित स्थान पर रखना, उन पर धूल न बैठने देना- कीडे न लगने देना हमारा कर्तव्य हे । चातुर्मास मे बरसात के कारण वातावरण मे नमी (गीलापन) होने से पुस्तकें भी प्रभावित होती है; इसलिए चातुर्मास के बाद (धूप तेज होती है, उसका उपयोग कर के) ज्ञानभडार (ग्रन्थागार) का प्रतिलेखन किया जा सकता है । यह दूसरा प्रकार है ।

पुस्तकें प्रकाशित करना, उन्हे स्वय पढना और दूसरों को पढने के लिए भेट करना, जो ज्ञान हमने प्राप्त किया है, उसे चर्चा द्वारा, प्रवचन द्वारा अथवा पुस्तकें लिखकर दूसरोंको परोसना ज्ञानपूजा का तीसरा प्रकार है ।

तीनों प्रकारो से ज्ञान की आराधना करना ज्ञानपञ्चमी मनाने का उद्देश्य है।

सक्षेप मे अक्षय तृतीया, दीपावली और ज्ञानपचमी - इन तीन पर्वो का परिचय देने के बाद चौथे पर्व कार्तिक पूर्णिमा पर थोडी विस्तृत चर्चा करेगे ।

कार्तिक पूर्णिमा को तीन कारणों से महत्त्व प्राप्त हुआ हे । उस दिन श्रावक-श्राविकाओ का समूह महातीर्थ शत्रुजय की यात्रा करता है । प्रात.काल चार बजे से ही सिद्धाचल की तलहटी पर प्रबल उत्साह और हर्षोल्लास से एकत्र युवको और युवतियों ही नहीं, बच्चों और बूढो तक की भीड मे भक्ति भावना देखकर भला किसका हृदय गीला नहीं हो जाता

सिद्धाचलजी की यात्रा क्या है ? मानो सिद्धशिला की ही यात्रा हे वह ! जहॉ पहुॅच कर अनन्त यात्रियों ने अपने भावों को पवित्र किया हे - तपस्या से कर्मनिर्जरा कर के परमपद (मोक्ष-धाम) पाया हे और जहॉ के मगलमय पुद्गलों के स्पर्शमात्र से रोमाचित शरीर के अन्त:करण मे धर्मध्यान की पावन सुरसरिता प्रवाहित होने का अनुभव सभी भव्यजनो को होता रहा है और आज भी होता है ।

दूसरा कारण है- साधु साध्वियों का विहार । वे मुक्त विहारी होते हे। किसी स्थान विशेष पर उन की आसक्ति नहीं होती । कहावत हे : -

बहता पानी निर्मला
बॅधा सो गन्दा होय
साधू तो रमता भला
दाग न लागे कोय ।।”

इसलिए चातुर्मास समाप्त हो जाने के कारण उस दिन सभी पचमहाव्रतधारी साधु-साध्वी अन्यत्र विहार कर जाते हे ।

तीसरा कारण है - कलिकालसर्वज्ञ ३ क्रोड श्लोक के रचयिता धुरन्धर विद्वान् जेनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी का जन्मदिन ।

सवत् ११४१ की कार्तिक पूर्णिमा को जन्म लेनेवाले हेमचन्द्रचार्यजी की दीक्षा सवत् ११५४ मे माघशुद १४ को हुई थी । जन्म नाम चागदेव था। दीक्षा के समय मुनिश्री सोमचन्द्र रक्खा गया; किन्तु सवत् ११६६ मे सूरिपद प्राप्ति के समय से उन्हे श्री हेमचन्द्राचार्य कहा जाने लगा ।

वे अत्यन्त प्रतिभाशाली थे । नौ वर्ष की अवस्था मे प्रव्रजित हुए और जीवनभर वे नेष्ठिक ब्रह्मचारी बने रहे । उन्होंने अपने गुरुदेव से शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया । उनके प्रवल पाण्डित्य का तत्कालीन सभी विद्वान् लोहा मानते थे ।

उन्होंने विपुल एव विविध साहित्य की रचना की थी । व्याकरण, कोष, छन्द, काव्यशास्त्र, चरित्र, महाकाव्य आदि सभी विद्याओ पर आपने सफलतापूर्वक मौलिक ग्रन्थ लिख कर गुजरात को ही नहीं, सारे भारतवर्ष को विश्वसाहित्य के मच पर गौरवान्वित किया हे ।

आपका सबसे एक बडा ग्रन्थ हे - "सिद्धहेम महाकाव्य' । यह विशाल, किन्तु सरल व्याकरण हे । पाणिनि के बाद ऐसा व्याकरणकार कोई अब तक नहीं हुआ है । पाणिनीय व्याकरण की तरह ईसमे भी आठ अध्याय हे । पणिनि ने सात अध्यायों मे सस्कृत व्याकरण का और आठवें अध्याय मे वेदिक-व्याकरण का समावेश किया है, उसी प्रकार हेमचन्द्रचार्यने भी सात अध्यायो मे सस्कृत व्याकरण का और आठवे अध्याय मे प्राकृत व्याकरण का समावेश किया हे ।

दूसरा ग्रन्थ हे- "त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरितम्" इसमे त्रेसठ महापुरुषों के जीवनचरित्रों का छत्तीस हजार श्लोकों मे वर्णन किया गया हे ।

इनके अतिरिक्त "अभिधानचिन्तामणि ("अमरकोष" की तरह पद्यात्मक शब्दकोष), वीतरागस्त्रोत्त ('स्याद्वादमजरी नामक दर्शनिक ग्रन्थ की व्याख्या), देशी नाममाला (कोष), योगशास्त्रम् ,काव्यानुशासनम् (साहित्यशास्त्र), छन्दोऽनुशासनम्, द्व्याश्रयमहाकाव्यम्, परिशिष्टपर्व, शब्दानुशासनम्, अनेकार्थसग्रह" (कोषग्रन्थ:) आदि उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है ।

पूर्णिमा को जन्म लेकर आचार्य श्री ने जीवन मे पूर्णता प्राप्त की, गुजरात मे अहिंसा धर्म का व्यापक प्रचार किया और महाराजा सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल भूपाल के जीवन को धार्मिक दिशा मे मोड दिया । श्रीकृष्ण के उपदेश को जिस प्रकार अर्जुन ने ग्रहण किया था, उसी प्रकार हेमचन्द्राचार्यके

उपदेश को कुमारपाल भूपाल ने ग्रहण किया और "परम आर्हत" का पद प्राप्त किया ।

आचार्यश्री के उपदेश से प्रभावित होकर कुमारपाल ने जैन धर्म की प्रभावना की, दुराचार का त्याग किया, जिनमन्दिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार कराया, अमारी घोषणा ("कोई किसी पशुपक्षी की हत्या न करे" - ऐसी राजाज्ञा जारी की तथा धूम धाम से उत्साह के साथ अनेक बार तीर्थयात्राएँ की । इन सब कार्यो के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि स्थान-स्थान पर ज्ञानभण्डार (जैन धर्म के ग्रन्थो का सग्रह) स्थापित किये, जिन की कुल संख्या इकीस थी ।

जैन धर्म का सूर्य के समान सर्वत्र प्रकाश फैलाने वाले जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि ने संवत् १२२९मे अर्थात् अठ्यासी (८८) वर्ष की अवस्थामे सलेखना के साथ शान्तिपूर्वक अपने जर्जर नश्वर शरीर का परित्याग किया ।

उनके चिरवियोग से पूरा जैनजगत् शोकमग्न हो गया था; फिर भी उनके ग्रन्थो का अध्ययन करते समय ऐसा लगता है कि वे आज भी हमारे समाने मौजूद है, जीवीत है, अमर है ।

सम्यक्त्व

विवेक आत्मा का मित्र हे, मिथ्यात्व उसका शत्रु । तत्त्वार्थ सूत्र मे :-

मिथ्यादर्शनाविरति प्रमादकषाययोगा बन्धहेतव:

।। अध्याय ८ सूत्र १ ।।

(मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग- ये कर्मबन्ध के कारण माना हे ।)

ऐसा लिखकर वाचक प्रवर उमास्वाति ने मिथ्यात्व को कर्मबन्ध का कारण माना हे ।

मिथ्यात्व के दो रुप होते हे । पहला हे - यथार्थ पर अश्रद्धा और दूसरा हे - अयथार्थ पर श्रद्धा ।

दोनो मे अन्तर यह हे कि पहला बिल्कुल मूढ अवस्था मे भी हो सकता हे, किन्तु दूसरा विचार दशा मे ही हो सकता हे । पहला अनभिगृहीत मिथ्यात्व हे, जो कीट पतगो मे या उने समान मूर्छित चेतना वाली जातियों मे हो सकता है, परन्तु दूसरा अनभगृहीत मिथ्यात्व कहलाता हे । यह मनुष्य जेसे मननशील प्राणी मे ही सभव होता है । जो विचार करता हे, वही किसी पर श्रद्धा कर सकता है - भले ही वह (श्रद्धेय) यथार्थ हो या अयथार्थ ।

शका करना मिथ्यात्व नहीं हे, किन्तु शका मन मे रखना मिथ्यात्व हे । गीतार्थ गुरुदेव के सामने प्रश्नों के रुप मे अपनी शका प्रस्तुत कर के उसका समाधान प्रांप्त कर लेना चाहिये । इसके बाद जो यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होगी, वही सम्यक्त्व का हेतु बनेगी । उसी से आचरण की प्रेरणा मिलेगी ।

धार्मिक व्यक्ति, घर मे हो या जगलमे, कभी अकेलापन महसूस नहीं करता । धर्म या सम्यक्त्वरत्न ही उसका साथी बन जाता हे । उसके मन, वचन और वर्तन मे एकता होती है :-

मनस्येक वचस्येकम्
कर्मण्येक महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्
कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।।

(महात्माओं के मन, वचन और कार्य मे एकता होती हे, किन्तु दुरात्माओ के मन, वचन और कार्य मे भिन्नता होती है)

सज्जन जैसा सोचते है, वैसा ही बोलते है और जैसा बोलते है, वैसा ही करते है; परन्तु दुर्जन सोचते कुछ है, कहते कुछ दूसरा ही है और करते कुछ तीसरा ही है; इसीलिए वे विश्वासपात्र नही हो पाते ।

अनुभवी सज्जनो के वचन जीवन को प्रकाश देते है – नई दिशा दिखाते है– मार्गदर्शन करते है; अत: प्रतिदिन कुछ समय सत्सग के लिए निकालना चाहिए ।

जगत् मे धनिक भी दु:खी है और निर्धन भी । एक अधिक खाकर मरता है और दूसरा भूखो मर जाता है; परन्तु ज्ञानी सज्जन को छोड कर कोई सुखी नही है ।

"तिन्नाण तारयाण"

ज्ञानी स्वय तैरते ही है दूसरो को भी तराते है । ज्ञान के साथ क्रिया भी जरूरी है :-

ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष. ॥

ज्ञान और क्रिया के दो पखो पर उडकर ही सज्जन रूपी पक्षी मोक्ष तक पहुँचता है । ज्ञान की लौ के साथ ज्ञानी क्रिया का तेल भरना नही भूलते । क्रिया अथवा सदाचार रूपी तेल के बिना ज्ञान का दीपक कब तक टिमटिमाता रहेगा ?

ज्ञान की तृप्ति क्रिया के आहार (सदाचार) से ही होती है । ज्ञान प्रभु की पवित्र वाणी के श्रवण से आता है । वाणी ज्ञानी गुरुदेव सुनाते है । वाणी सुनकर उसके अनुसार आचरण किया जाय तो आत्मा उन्नति के उत्तुग शिखर पर चढने लगेगी ।

प्रभु की पवित्र वाणी जहाँ बरसती हो, वहाँ तत्काल उसमे मस्तिष्करूपी टकी भर लेनी चाहिए । फिर गुरु वियोग होने पर (विहार कर जाने पर) टंकी खोली जाय और ज्ञान रस का उससे पान किया जाय । गुरुदेव के अभाव मे उनके प्रवचनो के सकलन पुस्तको के रूप मे उपलब्ध हो तो अवकाश के समय उनका बार- बार स्वाध्याय किया जा सकता है इस प्रकार उपदेशामृत मे मन को नहलाकर उसे पवित्र करने का प्रयास सभी कर सकते है, जिससे सम्यक्त्व का सर्जन हो और मिथ्यात्व का विसर्जन।

जड़ हीरा परखने की योग्यता पाने के लिए जौहरी को हजार दिन लग जाते है तो सचेतन आत्मा को परखने की योग्यता क्या आसानी से मिल जायेगी ? स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर के उपाधिधारी (एम ए) बनने के

लिए यदि सोलह वर्ष लग जाते हैं तो सम्यक्त्वधारी बनने के लिए चार पाँच वर्ष भी नहीं लगेंगे क्या ? यदि आप प्रतिदिन कम से कम दो गाथाएँ समझकर कण्ठस्थ करने का नियम बना लें तो पाँच वर्ष की अवधि में साढ़े तीन हजार से अधिक गाथाएँ आपके मस्तिष्क में सुरक्षित हो जायेंगी। "बूँद-बूँद से घड़ा भरता है" यह कहावत आप के जीवन में चरितार्थ हो जायेगी। आप श्रुतस्वामी बन जायेंगे।

आप का श्रुतज्ञान आपको आचरण की प्रेरणा देगा। इस प्रकार सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व), सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र आपके जीवन को भूषित करेगा।

पहले भौतिक सुखसामग्री उतनी नहीं थी जितनी आज है, फिर भी उन लोगों का जीवन सुखी था - शान्त था, परन्तु आज सामग्री सैकड़ों गुनी हो गई है; फिर भी सुख-शान्ति का अभाव है। सुख भीतर रहता है। बाहर दौड़-धूप करने से वह नहीं मिल सकता। दूर से सुख दिखाई देता है; परन्तु निकट जाने पर निराश होना पड़ता है; रात को सड़क पर प्रकाश देखकर एक बुढ़िया वहाँ आई और कुछ ढूँढने लगी। पूछने पर उसने बताया कि मैं अपनी सुई ढूँढ रही हूँ। लोगों ने पूछा - "कहाँ खोई थी सुई ?"

बुढ़िया - "घर में खोई थी !"

लोग - "तो उसे घर में क्यों नहीं ढूँढ रही हो ?"

बुढ़िया - "इसलिए कि घर में प्रकाश नहीं है !"

बुढ़िया की मूर्खता पर हमें हँसी आती है, परन्तु भीतर सुख न देखकर उसे बाहर खोजनेवाले हम भी उस बुढ़िया से किसी तरह कम मूर्ख नहीं ठहरते !

सहिष्णुता और क्षमा से ही मानसिक शान्ति का विकास होता है। एक व्यक्ति किसी ज्ञानी को क्रुद्ध करने के प्रयास में मनमानी गालियाँ बकता रहा - निन्दा करता रहा - आरोप लगाता रहा; किन्तु ज्ञानी शान्तिपूर्वक सहता रहा। जब बकझक करके वह चुप हुआ, तब ज्ञानी ने उसे जल से भरा हुआ एक लोटा देते हुए कहा - "लो भैय्या ! यह जल पी लो। बहुत देर से भाषण कर रहे हो। गला सूख गया होगा।"

यह सुनकर वह व्यक्ति पानी-पानी हो गया। जल पीने के बाद उसे विचार आया कि यह तो मुझे पराजित करने की एक चाल है। मैं इस चाल में क्यों फँसूँ

फलस्वरूप वह और भी जोरों से चिल्लाने लगा, ज्ञानी मुस्कराता

रहा । दिन अस्त हुआ । वह आदमी बोलते-बोलते थक कर चुप हो गया। ज्ञानी ने प्रेम से भोजन कराया, उपहार दिया और जब वह विदा होने लगा, तब अपने पुत्र को साथ भेज दिया कि वह सुरक्षित रूप स उसे उसके घर पहुँचा आये । क्षमा के कारण क्रोधी हमेशा के लिए सत बन गया । पारस पत्थर के सपर्क से लोहा भी सोना बन गया ।

ऐसी ही एक घटना गालिब के जीवन की है । मौलवी अमीमुद्दीन ने सुप्रसिद्ध शायर मिर्जा गालिब के विरुद्ध एक किताब लिखी । उसे देखकर किसी ने उनसे पूछा - "हजरत ! आपने उस किताब का कुछ जवाब नहीं लिखा ?"

इस पर गालिब ने कहा - "अगर कोई गधा तुम्हे लात मारे तो क्या तुम भी उसे लात मारोगे ?"

जो समर्थ होता है- वीर होता है, वही क्षमा का परिचय दे सकता है .-

समाज मे रहने पर ही आपके सगुण कसौटी पर उतरेगे । एकान्त गुफा मे जहाँ क्रोध का अवसर ही नहीं आता, वहाँ यह नहीं जाना जा सकता कि आप अक्रोधी है-शान्त है-क्षमाशील है । व्यवहार ही वह दर्पण है, जिसमे आपका स्वभाव दिखाई देता है ।

जीभ चाहे जितना घी खाले, परन्तु वह चिकनी नही होती, उसी प्रकार ज्ञानी ससार मे रहकर भी उसमे आसक्त नहीं होता । जल मे कमल के समान अलिप्त रहता है । सयम और तप से वह अपनी आत्मा को पवित्र करता रहता है .-

"सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ॥"

अज्ञ अवस्था मे बाधे गये कर्म सुज्ञ अवस्था मे भोगे जाते है । "जब ; सो जाऊँ तब सगीत बन्द करवा देना" ऐसा आदेश त्रिपृष्ठ वासुदेव ने सेवक को दिया था; परन्तु सेवक भूल से इस आदेश का पालन नहीं कर पाया । क्रुद्ध होकर वासुदेव ने उसके कानों मे सीसा डलवा दिया । फिर महावीर के भव मे जब कानों मे कीले ठोके जा रहे थे, तब पूर्वभव मे कृत कर्म का स्मरण करके प्रभु शान्त रहे । ज्ञान ने उन्हे क्षमाशील बना दिया था । सभी सगुणों का कारण सम्यक्त्व है ।

जीवन विकास

पूर्वाचार्यो ने कहा हे -

"मा सुयह जग्गिअव्व,
पलाइयव्वम्मि कीस वीसमह् ।
तिण्णि जणा अणुलग्गा
रोगो य जरा य मच्चू य ।।"

[मत सोओ, जागते रहो । जहॉ तुम्हे भागना चाहिये, वहॉ तुम विश्राम केसे कर रहे हो ? रोग, जरा (बुढापा) और मृत्यु-ये तीन लोग तुम्हारा पीछा कर रहे हे]

यदि कोई एक दुष्ट भी हमारा पीछा कर रहा हो तो उससे बचने के लिए हम भागते हे, फिर जहॉ तीन-तीन दुष्ट हमारे पीछे पडे हों तो हम विश्राम करने की भूल केसे कर सकते हे ?

परन्तु हो यही रहा हे । इस भूल का अहसास हमे गुरुदेव कराते हे । वे सावधान करते हे और पुरुषार्थ करने की सलाह देते हे ।

जीवन प्राप्त करना सरल हे जो प्राणी जन्म लेता हे, उसे जीवन तो मिल ही जाता हे; परन्तु उस जीवन को शुद्ध बनाये रखना-वेराग्य और सयम के प्रयोग से उसे विकसित करने का प्रयास करना आसान कार्य नहीं हे । पानी मे नाव रहे तो कोई बात नही; परन्तु नाव मे पानी नही रहना चाहिये; अन्यथा वह डूब जायेगी ।

शास्त्राकार कहते हे -

जहा पउम जले जाय, नोवलिप्पइ वारिणा ।।

जिस पकार कमल जल मे उत्पन्न होता हे, फिर भी जल से निर्लिप्त रहता हे, उसी प्रकार ससार मे उत्पन्न होकर भी ज्ञानी ससार से लिप्त नहीं होता-ससार के भौतिक कामभोग के क्षणिक सुखों मे आसक्त नहीं होता । वह समझता हे कि जीव प्रवासी हे, वासी नहीं । ससार मे कितनी भी सम्पत्ति सचित क्यो न कर ली जाय ? वह सब एक दिन छूट जायेगी । मृत्यु आने पर दिनरात निकट रहने वाली पत्नी भी मुर्दे शरीर के पास बेठना पसद नही करती-शरीर भी जीव के साथ नहीं जाता, फिर भला यह सम्पत्ति केसे साथ रह सकती हे ?

जीवन क्षणभंगुर सपने जैसा है । सपना घटे-दो घटे का होता है और जीवन साठ-अस्सी अथवा अधिक से अधिक सौ-सवा सौ वर्ष का ! यही दोनो मे अन्तर है । इस जीवनरूपी सपने का अधिक से अधिक सदुपयोग करने वाला ही बुद्धिमान् है । प्रभु महावीर ने कहा था -

समय गोयम ! मा पमायए ।।"

(हे गौतम ! तु क्षण भर भी प्रमाद मत कर)

ज्ञानी तो द्रष्टा है-दर्शक है । उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना तो हम को ही पडेगा; अन्यथा हम भवसागर को पार नहीं कर सकेगे -

अरिहतो असमत्थो
तारिउ जणाण भवसमुद्दम्मि ।
मग्गे देसणकुसलो
तरन्ति जे मग्गि लग्गन्ति ।।

(लोगों को भवसमुद्र से पार ले जाने मे अरिहन्त समर्थ नहीं है । वे केवल मार्ग दिखाने मे कुशल है । जो उस मार्ग पर चलते है, वे ही पार होते है)

किसी विचारक ने कहा है- "यदि कोई अच्छा काम करना हे तो आज ही अभी कर डालो और यदि कोई बुरा काम है तो कल तक ठहरो ।"

इसी प्रकार एक अन्य विचारक ने कहा है - "जो काम कभी भी हो सकता है, वह कभी नहीं हो सकता । जो कभी होगा, वही होगा !"

जो लोग कहते है- धर्म तो कभी भी कर लेगे । वह भाग कर कहाँ है ? बुढापे मे उसका पालन कर लेगे ।' वे सब भ्रम के शिकार धर्म के लिए कोई समय निर्धारित नहीं होता । पूरा जीवन ही धर्ममय चाहिये; क्योंकि मौत का पता नहीं है । क्या पता वह कब आक्रमण कर दे !

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्मसमाचरेत् ।।"

(मृत्यु ने केश पकड रक्खे है -ऐसा सोच कर धर्माचरण करना चाहिए)

बुढापे के भरोसे आप बैठे रहे और जवानी मे ही चल बसे तो क्या होगा ? उम्र लम्बी होने से बुढापा आ गया तो भी उसमे धर्म कितना होगा ? उसका मूल्य क्या होगा ? इस पर विचार करते हुए नीतिकार कहते है -

नवे वयसि य शान्त-
स शान्त इति मे मति ।
धातुषु क्षीयमाणेषु
शान्ति कस्य न जायते ?

(नई अवस्था (जवानी) मे जो शान्त (धार्मिक) रहता है, वही सच्चा शान्त है-ऐसा मे मानता हूँ; क्योंकि (बुढापे मे) धातुओं के क्षीण हो जाने पर भला कौन शान्त नहीं हो जाता ?)

इन्द्रियो के और आत्मा के स्वभाव मे भिन्नता हे । मानव जीवन इन दोनों के बीच फँस गया हे । इन्द्रियाँ विषयों की ओर आकर्षित होती हे। उनका मार्ग प्रेय है । बच्चे तो बिस्कुट, टॉफी, चाकलेट और आइस्क्रीम की ओर आकर्षित होते हे; परन्तु माता समझती है कि उन चीजों मे बच्चों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा; इसलिए वह उन चीजों से बच्चों को बचाने की कोशिश करती है । माता की तरह गुरुदेव भी इन्द्रियों के विषयों की ओर दौडनेवाले अज्ञानी मनुष्यों को समझाते हे और उन्हे आत्मा के श्रेयमार्ग की ओर मोडते हे, जिससे क्षणिक नहीं, स्थायी सुख सबको मिल सके।

वे समझाते हे-शरीर से नहीं, अपने आप से प्रेम करो । जो अपनी आत्मा से प्रेम नहीं करता, वह दूसरों से भी प्रेम नहीं कर सकता ।

जो आत्मा से प्रेम करता हे, वह सयमी बन सकता है । उसके सम्पर्क मे आनेवाले भी सयमी बन जाते हे; जेसे एक दीपक से हजारों दीपक जल सकते हे ।

मानव समाज मे सगठन का आधार प्रेम हे और विघटन का आधार द्वेष । जो फटे हृदयों को जोडने का काम करता हे, उसका स्थान अपने आप महत्त्वपूर्ण हो जाता हे-उच्च हो जाता हे ।

किसी ने एक दर्जी से पूछा - आप सुई जेसी छोटी चीजको पगडी मे रखते हे और केंची को पेरो मे ! ऐसा क्यो करते हे ?"

दर्जी ने उत्तर दिया - भाई ! दर्जी अपनी मर्जी से ऐसा नहीं करते, किन्तु अपने गुणो के ही कारण इन्हे उँचा-नीचा स्थान मिलता हे । सुई छोटी जरुर है, परन्तु यह सदा जोडने का काम करती हे; इसलिए इसे पगडी मे रखा जाता है । इससे विपरीत केंची काटने का-अलग करने का-फूट डालने का काम करती हे; इसलिए उसे पेरो के पास रखा जाता हे !"

प्रेम से सगठन होता है और सगठन मे शक्ति का निवास ।

सम्राट् अशोक बडी मुश्किल से कलिग देश पर विजय पा सके थे। उसकी आश्चर्यजनक शक्ति का कारण पूछने पर कलिग देश ने सम्राट् अशोक से कहा - राजन् ! मे प्रत्येक सैनिक को हार्दिक प्रेम देता हूँ। वे भी आपस मे प्रेम करते है; इसलिए सगठित रहते है। यह सगठन ही शक्ति का कारण है ।"

महात्मा गाधी के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए एक कवि ने गाया था -

तुमने अपना प्राण दिया और मौतकी शान बढाई ।
तुमने अपना खून दिया और प्रेम की ज्योति जलाई ॥"

महात्माजी की अहिसा और देशवासियो के प्रति उनका हार्दिक प्रेम प्रसिद्ध है ।

खून से खून का दाग नहीं घुलता । उसके लिए प्रेम-जल चाहिये । डाकू रत्नाकर को एक ऋषि के प्रेम ने महर्षि वाल्मीकि बना दिया था। करुणा भी प्रेम का ही एक रूप है । उसमे इतनी कोमलता होती हे कि कठोर से कठोर हृदय भी (करुणा से) कोमल बन जाता है । हृदयरूपी पर्वत से सदा करुणा, प्रेम, वात्सल्य और दया का झरना बहता रहे तो इस दुनिया के दु ख नगण्य रह जाएँ ।

प्रभु कहते थे -

मित्ती मे सव्वभूएसु
वेर मज्झ न केणइ ॥"

(मेरी सब प्राणियो से मित्रता है, किन्तु शत्रुता किसी से नही हे !)

धरती सब के लिए अन्न उत्पन्न करती है- पानी सब की प्यास बुझाता है- हवा सभी प्राणियो को जीवित रखती है-सूर्य सब को प्रकाश देता हे-पेड सब को फल और शीतल छाया देते है-फूल सब को सुगन्ध लुटाते हे; फिर मनुष्य ही क्यो स्वार्थी और सकुचित रहे ? प्रकृति की तरह मनुष्य के हृदय मे भी उदारता, विशालता, प्रेम और परोपकार के दर्शन क्यो न हो ?

जीवनविकास के लिए समस्त दुर्गुणो का त्याग तो जरूरी हे ही, साथ ही समस्त सगुणो को अपनाना भी जरूरी है ।

फूल मे दुर्गन्ध बिल्कुल नही होती और सुगन्ध भरपूर होती हे । जीवन भी क्या ऐसा ही एक फूल नही है ?

जीवन का लक्ष्य

कली मुस्कुराती है तो वह विकसित होकर फूल वन जाती हे । जीवन विकास के लिए भी प्रसन्नता इसी प्रकार आवश्यक है ।

क्रोधादि कषाय उस प्रसन्नता को नष्ट कर देते है । मोह, ममता और विषयासक्ति से भी यही कार्य होता हे । शोक, चिन्ता, अन्याय, अत्याचार और भय भी हमारी प्रसन्नता को छीन लेते हे । निर्बलता और भीरुता से भय उत्पन्न होता हे ।

एक शान्तरस के कवि का कथन है कि दुनियाँ मे वेराग्य को छांडकर अन्य समस्त वस्तुओं का सम्बन्ध भय से होता हे; क्योंकि जिस वस्तुओंको हम पाना चाहते हे और पा लेते हे, उसके नष्ट होने का भय मन मे टिका रहता है -

"सर्व वस्तु भयान्वित भुवि नृणा"
वैराग्यमेवाभयम् ।।"

जब श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूँछा कि मन को वश मे करने का उपाय क्या है, तब उन्होंने उत्तर दिया -

"अभ्यासेन तु कौन्तेय !
वेराग्येण च गृह्यते ।।"

(हे अर्जुन ! अभ्यास और वैराग्य से मन वश मे किया जा सकता है)

श्मशान मे मुर्दे को भस्म होते देखकर किसे वेराग्य नहीं होता ? कौन नहीं सोचता कि हमे भी एक दिन परिश्रमपूर्वक जोडी गई सम्पत्ति छोडकर अकेले ही जाना होगा ? परिवार का प्रियतम सदस्य भी हमारे साथ नहीं आयेगा ?

"हम-हम करि धन-धाम सँवारे
अन्त चले उठि रीते !
मन पछि तै हे अवसर बीते !"

धन, सत्ता, रूप, यौवन, परिवार आदि सब फुलाये हुए गुब्बारे की तरह हे । हवा निकलते ही सब कान्तिहीन हो जाएँगे । इन पर गर्व करना

---

१ "नगण्य" इसलिए कि जन्म, जरा, मृत्यु के अनिवार्य दु ख ही रहेंगे; अन्य दु ख नही ।

व्यर्थ है। सारा ससार एक सुन्दर धर्मशाला है, जिसमे अमुक अवधि तक हमे रहना है। अवधि समाप्त होते ही पुण्य-पाप की गठरी लेकर हमे अनिवार्य रूपसे आगे बढना होगा। धर्मशाला मे स्थायी निवास किसी का नहीं होता -

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
कान्ता गृहद्वारि जन श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
कर्मानुगो गच्छति जीव एक ॥

[धन जमीन मे (पहले धन एकान्त स्थल मे गाडकर रखा जाता था), पशु बाडे मे, पत्नी घर के दरवाजे तक, परिवार तथा अन्य बन्धुगण श्मशान तक और अपना शरीर चिता तक साथ आता है अर्थात् ये सब क्रमश छूटते चले जाते है और अन्त मे कर्मसहित जीव को अकेले ही यात्रा के लिए निकलना पडता है]

जीवन माँगकर लाये हुए गहने की तरह झूठी शान बढाने के अतिरिक्त किसी काम नही आता !

परन्तु वैराग्य के ऐसे समस्त विचार श्मशान से घर लौटते ही गायब हो जाते है। ससार की क्षणिक वस्तुएँ फिर से मन को आकर्षित करने लगती है।

रास्ते से गुजरते हुए किसी फिल्म के पोस्टर पर नजर पडते ही उसे देखने की उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है। फिल्म देखे बिना वह उत्सुकता शान्त नही हो सकती। जब तक वह शान्त नहीं हो जाती, तब तक चित्त की एकाग्रता (जो मानसिक शान्ति के लिए आवश्यक है) कैसे रह सकती है ? प्रभु महावीर बहुत ही महत्त्वपूर्ण सन्देश देते है -

जय चरे जय चिट्ठे
जय आसे जय सए।
जय भुजतो भासतो
पाव कम्म न बन्धइ ॥

(सावधानी पूर्वक चलने, खडे रहने, बैठने, सोने, खाने और बोलने वाले को पाप नही लगता !)

हमारी प्रत्येक क्रिया सावधानीपूर्वक होनी चाहिये- विवेकपूर्वक होनी चाहिये-विचारपूर्वक होनी चाहिये ! यही प्रभु के सन्देश का आशय है

जिसके सारे कार्य मर्यादित होते है, वही सज्जन है वह स्वाद के

लिए भोजन नहीं करता, केवल शरीर को टिकाये रखने के लिए ही आवश्यक खुराक ग्रहण करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह जीने के लिए खाता है; खाने के लिए नहीं जीता।

भूख बुझाने के लिए भोजन करना अर्थदण्ड है। स्वाद की लालच में ठूँस-ठूँसकर खाना अनर्थदण्ड है। यही बात प्रत्येक कार्य में समझें। अनर्थदण्ड ही पाप का कारण होता है।

हम दूसरों को सताते हैं तो दूसरे हमें सताते रहते हैं। इस प्रकार दुनिया में पापवृद्धि के अवसर आते रहते हैं। पुण्य का फल सुख है और पाप का फल दुःख। यह जानते हुए भी लोग पाप नहीं छोड़ते। हजारों वर्ष पहले महर्षि व्यास ने लिखा था -

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति
पुण्य नेच्छन्ति मानवा ।
पापस्य फल नेच्छन्ति
पाप कुर्वन्ति यत्नत ॥

[मनुष्य पुण्य का फल (सुख) तो चाहते हैं; परन्तु पुण्य (परोपकार) करना नहीं चाहते। इससे विपरीत पाप का फल (दुःख) नहीं चाहते (फिर भी) यत्नपूर्वक पाप करते रहते हैं।]

महर्षि की बात आज भी सच्ची साबित हो रही है। मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन अब तक नहीं हो पाया है। लोहे का टुकड़ा यदि कीचड़ में भरा हो तो पारस से छूने पर भी वह सोना नहीं बनता। इसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान, विषय-कषाय आदि का कीचड़ लिपटा हो, तब तक गुरुदेव के सदुपदेश का उस पर कोई असर नहीं होता।

मनुष्य को यदि स्वरूप (आत्मा के स्वभाव) का ज्ञान हो जाय तो वह मानव से महामानव बन जाय। महामानव बनने के लिए सदृढ संकल्प होना चाहिये।

कबीर साहब के एक दोहे का भाव यह है कि जब शिशु जन्म लेता है, तब रोता है और दूसरे हँसते हैं (प्रसन्न होते हैं)। उसे ऐसा कार्य करना चाहिये कि जब उसकी मृत्यु हो तब वह हँसे और अन्य सब लोग रोने लगें कि कितना अच्छा आदमी था! हमारे दुर्भाग्य से आज चला गया।

परोपकारी को ही इस तरह लोग याद करते हैं। आप भी यथाशक्ति परोपकारी बनीये और यदि दूसरे लोग आपका उपकार करते हैं तो आप उनके प्रति पूरे कृतज्ञ रहिये।

कुत्ता अपने पालक की यथाशक्ति सेवा करता है। उसे कभी रोटी

नहीं देता। जो व्यक्ति अपने उपकारी को धोखा देता है, वह जिस थाली मे खाता है, उसी थाली मे छेद करने वाला नमकहराम हे-कृतघ्न हे। जिसके जीवन मे कृतज्ञता के स्थान पर कृतघ्नता का निवास होता हे, वह व्यक्ति कुत्ते से भी गया- गुजरा होता है।

एक कृतज्ञ व्यक्ति दस परोपकारियो को पैदा करता है और एक कृतघ्न व्यक्ति सौ परोपकारियो को पैदा होने से रोक देता है।

जो आत्मज्ञ होता है, वही कृतज्ञ बन सकता है। आत्मज्ञता के लिए आवश्यक है - देव की करुणा, गुरु के उपदेश और धर्म का पालन। देव-गुरु-धर्म की अनुकूलता से जीवन मे ऐसा सौम्य उज्ज्वल प्रकाश उत्पन्न होता है, जो चारो और शान्ति स्थापित कर सके, सर्वत्र आनन्द विखेर सके, प्रेम की वर्षा कर सके।

भागते हुए किसी व्यक्ति से यदि आप पूछ ले कि "गन्तव्य स्थल कौनसा है ?" और यदि वह मौन रह जाय अथवा कह दे कि "मुझे मालुम नही" तो आप उसे सहसा मूर्ख समझेगे; परन्तु क्या वही मूर्खता हम मे नहीं है ? हम जीते जरूर है, किन्तु हमे अपने जीवन का उद्देश्य ही नही मालुम। एक साधारण कीडा भी एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर किसी प्रयोजन से ही जाता है; परन्तु मनुष्य जैसे विकसित प्राणी को जीवन का प्रयोजन मालुम न हो-यह कितने आश्चर्य की बात है ?

लक्ष्य निश्चित होने पर ही ठीक दिशा मे प्रगति हो सकती हे। श्रमण आत्मकल्याण के लिए श्रम करता है; किन्तु पुद्‌लानन्दी साधारण जीव ससार मे पर्यटन करने के लिए परिग्रह और पाप की पोटली बाँधने मे लगा रहता है।

तराजू का कॉटा स्थिर होने पर ही वस्तु का ठीक भार बताता हे। उसी प्रकार स्थिर मन को ही जीवन का लक्ष्य मालुम हो सकता हे। उसके लिए चिन्तन-मनन की जरूरत होती है, दौड-धूप की नहीं।

त्याग, तप, सयम, नियम आदि के द्वारा आत्मा को सासारिक वन्धनों से मुक्त करना ही जीवन का प्रयोजन है। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य को अपना जन्मसिद्ध अधिकार बताया था, वेसे ही ससार के समस्त साधु मोक्ष को प्राणियो का जन्मसिद्ध अधिकार बताते है। वे कहते है-जीव को शिव, नर को नारायण, मानव को महामानव और अह (आत्मा) को अर्हम् (परमात्मा) बनाना ही हमारे जीवन का लक्ष्य है।

सच्चा जैन

लोग धर्म की बातें तो खूब करते हे; परन्तु धर्म को अपनाते नही; इसीलिए दु खी रहते हे ।

"धर्मो रक्षति रक्षित ।।"

(यदि हम धर्म की रक्षा करते है; तो धर्म हमारी रक्षा करता हे)

धर्म की रक्षा करने के लिए आत्मा के स्वरूप को समझना पडेगा । आत्मा का लक्षण है-चेतना, आनन्द, ज्ञान, दर्शन और चारित्र ।

शोक से आर्त्त ध्यान होता है, क्रोध से रौद्रध्यान । आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से कर्मो का वन्ध होता हे और जीव जन्म जरा-मरण के चक्कर मे पडा रहता हे । इससे विपरीत आत्मा के स्वरूप को पहिचान लेने पर धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान होते हे, जो प्राणी को मोक्ष की ओर ले जाते हे ।

कर्मो से लिपटा जीव अनादिकाल से वासना की परिधि मे निवास करता रहा हे । उस परिधि से धर्म ही उसे बाहर निकाल सकता हे । आत्मा पर लगी कर्म रज ज्यों- ज्यो हटती जायगी, त्यो त्यों आत्मा अधिकाधिक उज्ज्वल होती जायेगी ।

ससार मे घडी के पेडुलम (लोलक) की तरह जीव राग और द्वेष के बीच झूल रहा हे । वीतराग देव की शरण मे जाने पर ही उसे शान्ति प्राप्त हो सकती हे । वे हमारी नौका के कर्णधार हे । प्रभु के प्रति अनन्य श्रद्धा हो - भक्ति हो- समर्पण का भाव हो तो भवसागर ही क्यो ? भौतिक दु खो का सागर भी पार किया जा सकता है । जेसा कि जेनाचार्य श्री मानतुगसूरि ने आदिनाथ स्तोत्र (भक्तामर) मे लिखा हे :-

अम्भौनिधो क्षुभित-भीषण-नक्रचक्र-
पाठीन-पीठ-भयदोल्वण-वाडवाग्नौ
रगतरङ्ग - शिखर-स्थित-यानपात्रा-
स्त्रास विहाय भवत: स्मरणाद् व्रजन्ति ।।

(वृद्ध और भयकर नको के समूह एव मगरमच्छों के कारण भयभीत करनेवाले तथा प्रचण्ड वाडवाग्नि वाले समुद्र मे हिलने वाली तरगों के शिखर पर नौका मे बेठे हुए यात्री भी आपका स्मरण करने से कष्टों मे न पडकर पार हो जाते हे ।)

एक बार यात्रियोसे भरा हुआ एक जहाज समुद्र की सतह पर चला जा

रहा था कि सहसा एक भयकर तूफान आया । उससे जहाज डगमगाने लगा । एक श्रावक यह देखकर प्रभु का ध्यान करने बेठ गया । उसकी पत्नी ने कहा :- "यह तो डूब मरने का समय है ध्यान करने का नहीं !"

यह सुनकर पति ने पिस्तौल उठाकर पत्नी को निंशाना बनाया । पत्नी मुस्कुरा ने लगी । पति ने कारण पूँछा तो उसने कहा :- 'मुझे पूरा विश्वास है कि तुम मुझ पर गोली नही चलाओगे; इसीलिए तुम्हारे इस अभिनय पर मुझे हँसी आ गई ।"

इस पर पति ने कहा :- "जैसे तुम्हें मुझपर विश्वास है, वैसे ही मुझे प्रभु पर विश्वास है; इसी लिए मे निश्चिन्त होकर प्रभुका ध्यान कर रहा हूँ ।'

कुछ समय सचमुच आशा के अनुरूप तूफान शान्त हो गया

जैसे शिव का भक्त शेव, विष्णु का भक्त वेष्णव और बुद्ध का भक्त बौद्ध कहलाता है, वैसे ही जिन का भक्त जैन है ।

रागद्वेष के विजेता को जिन कहते है । जिन देव निष्पक्ष होते हे- परम विवेकी होते है । उनके अनुयायी भी निष्पक्ष और विवेकी बने ।

हस जिस प्रकार पानी छोड कर दूध पी लेता हे, वेसे ही विवेकी सद्गुण सब से ग्रहण करता है और दुर्गुण छोड देता है । इससे विपरीत अविवेकी कुप्पी (कीप या छन्नी) के समान कचरे जैसे दुर्गुणों को ग्रहण करता है और सद्गुणो को छोड़ देता है ।

परमविवेकी प्रभु ने अशान्त जगत् को शान्त करने के लिए, विविध विवादों को सुलझाने के लिए तंथा सच्चे ज्ञान को प्रकाशित करनेके लिए स्याद्वाद का सिद्धान्त प्रकट किया है । स्याद्वाद को ही अनेकान्तवाद कहते हे ।

स्याद्वाद विभिन्न दृष्टिकोणो से एक वस्तु को देखना सिखाता हे । वह सलाह देता है कि किसी वस्तु को ठीक तरह से समझने के लिए (जरूरी है कि उसे) आप केवल अपनी ही नहीं, किन्तु दूसरो की आँखों से भी देखने का प्रयास करे ।

"एकस्मिन्वस्तुन्यविरुद्धनानाधर्मस्वीकारो हि स्याद्वाद ।"

(एक वस्तु मे अनिरोधी अनेक धमा की स्वीकृति स्याद्वाद हे।)

बडे मुल्ला ने पत्नी से कहा :- "थोडा सा पनीर ले आओ । वह भूँख बढाता हे ।"

पत्नी बोली :- "अजी ! पनीर तो घर मे नहीं है । कैसे लाऊ ?"

मुल्ला :- "यह तो अच्छी बात है क्यो कि पनीर दाँतों की जडों को कमजोर बनाता है ।"

पत्नी :- "आपने पनीर के विषयमे दो अलग-अलग बाते कही है। एक से वह अच्छा मालूम होता है और दूसरी से बुरा। दोनों मे से कौन सी बात मानी जाय ?"

मुस्कुराते हुए मुल्लाजी बोले :- "बाते दोने सच्ची है"; परन्तु मानना अपनी परिस्थिति पर निर्भर है। यदि घर मे पनीर हो तो पहली बात मान लो और न हो तो दूसरी।"

व्यवहार मे स्याद्वाद की कदम कदम पर जरूर होती है। यही कारण है कि आचार्यो ने अनेकान्त को वन्दन करते हुए कहा है :-

जेण विणा लोगस्सवि
ववहारो सव्वहा न निव्वडई
तस्स भुवणेक्कगुरुणो
णमो अणेगतवायस्स ॥

(जिसके विना लोक का व्यवहार भी बिल्कुल चल नही सकता। ससार के एक मात्र गुरु उस अनेकान्तवाद को नमस्कार हो)

एक ही व्यक्ति किसी का पति है, किसी का पिता, किसी का पुत्र और किसी का भाई। क्या विरोध है इसमे ? पत्थर छोटा होता है या बडा ? इस प्रश्न का उत्तर विना अनेकान्त के दिया ही नहीं जा सकता। कहना पडेगा कि वह ककर से बडा होता है और चट्टान से छोटा। इस प्रकार एक ही पत्थर "छोटा" भी है और "बड;" भी ! जहाँ विभिन्नता मे एकता के दर्शन होते है - अनेकान्त हो जाता, वही अनेकान्त है। इसी सिद्धान्त के द्वारा महाश्रमण महावीर ने तीन सौ तिरसठ (३६३) मतों का समन्वय किया था

'जन' और 'जेन'मे केवल दो मात्राओं का अन्तर है। एक मात्रा विचार की है और दूसरी आचार की। विचारो मे जिसके अनेकान्त हो और आचार मे अहिसा, वही व्यक्ति "जेन" कहलाता है। विचार और आचार की शुद्धि के द्वारा कोई भी जन जेन बन सकता है। दो पखों से उडने वाले पक्षियों मे कोई भेदभाव नही होता, उसी प्रकार विचार और आचार के दो पख जुड जाने पर बिना किसी जातिभेद के कोई भी जन 'जैन' बनकर ससाररूपी जगल मे उडान भर सकता है।

अधिक कीचड और कम पानी जहाँ हो, वहाँ हाथी फँस जाता है; किन्तु इससे विपरीत कम कीचड और अधिक पानी हो, वहाँ हाथी पार निकल जाता है। उसी प्रकार ससार मे वही प्राणी भटकता है, जिसके

जीवन मे अधिक पाप और कम पुण्य । इससे विपरीत अधिक पुण्य और कम पाप वाला प्राणी धीरे-धीरे पार हो जाता है । पुण्य और पाप का यह विवेक जेन धर्म सिखाता है ।

अहकार से पापो मे वृद्धि होती है; इसलिए जैन धर्म ने नमस्कार का महामन्त्र दिया है । विनय अहकार का विरोधी हे । विद्या से विनय आता है । फल आने पर आम की शाखाएँ झुकती है; किन्तु ताड की शाखाएं ऊची हो जाती है । आम मधुर है और ताड मादक । विनय मधुर है और अहकार मादक । बीज से फल पैदा होता है और फल से बीज ! इसी प्रकार विद्या से विनय उत्पन्न होता हे और विनय से विद्या आती हे, क्योकि विनीत शिष्य को ही गुरुदेव शास्त्रो का रहस्य समझाते हे, अविनीत को नही । अविनीत या अहकारी अपने को बहुत बडा ज्ञानी समझ लेता है; इसलिए उसका विकास रुक जाता है । वह और अधिक समझना ही नही चाहता; इसलिए कोई उसे समझा भी नहीं सकता । कहा है :-

अज्ञः सुखमाराध्यः
सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धम्
ब्रह्माऽपि त नर न रजयति ॥

(अज्ञानी को सरलता से समझाया जा सकता हे । विशेष ज्ञानी को और भी अधिक सरलता से समझाया जा सकता है; परन्तु थोडा-सा ज्ञान पाकर जो अपने को महान् पण्डित समझ लेता हे, उसे तो स्वय ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता !)

हिन्दी मे कहावत है :- "थोथा चना, बाजे घना !" इसी आशय को सस्कृत की इस सूक्ति मे बहुत पहले ही नीतिकारों ने प्रकट कर दिया था :-

"अल्पविद्यो महागर्वः ॥"

(जिस मे विद्या कम होती है, वह घमण्ड अधिक करता हे)

सक्षेप मे जो प्रभु का अनन्य भक्त है - जिसका विचार अनेकान्त मे और आचार अहिसा से अलकृत होता है तथा जो विनयपूर्वक विद्या का अध्ययन करता रहता है, वही सच्चा जैन है ।

गुरू-शिष्य

'गु' शब्दस्त्वन्धकारः स्याद्
'रु' शब्दस्तन्निरोधकः
अन्धकार निरोधित्वाद्
गुरुरित्यभिधीयते ॥

('गु' का अर्थ है - अन्धकार और 'रू' का अर्थ है - निवारक। अज्ञानरूपी अन्धकार का निवारक होने से ही किसी व्यक्ति को गुरू' कहा जाता है)

अन्धा क्या चाहे ? दो आँखे । यदि कोई किसी अन्धे को आँखे दे दे तो वह जीवन-भर उसके प्रति कृतज्ञ बना रहेगा । गुरू भी शिष्यों के विवेक चक्षु खोलने का काम करता है; इसलिए वन्दनीय है :-

अज्ञान-तिमिरान्धानाम्
ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरून्मीलित येन
तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(अज्ञानरूपी अन्धकार से जो अन्धे है उनकी चक्षु को ज्ञानरूपी अजनशलाका से खोलने वाले गुरू को हम नमस्कार करते है)

गुरु मे ज्ञान तो भरपूर होना ही चाहिये, साथ ही उसका आचरण भी पवित्र होना चाहिये । वाणी के अनुसार उसका व्यवहार भी होना चाहिये; अन्यथा शास्त्रकारो के अनुसार वह सच्चा गुरू नहीं हो सकता । वह धुआँधार प्रवचन कर के भले ही गुरुत्व का सन्तोष प्राप्त कर ले, परन्तु आचरण को अपनाये बिना वह वास्तविक गुरू पद नही पा सकता ।

भणता अकरिन्ता य
बन्धमोक्खपइण्णिणो ।
वायाविरियमेत्तेण
समासासन्ति अप्पय ॥

[बन्ध और मोक्ष की प्ररूपणा करने वाले जो लोग कहते है पर वैसा स्वय करते नही है, वे बोलने की शक्ति मात्र से अपने आप को सन्तुष्ट रखते है]

ऐसे गुरुओ को भविष्य मे पछताना पडेगा – ऐसी चेतावनी महात्मा कबीर ने इन शब्दो मे दी थी :-

कहते सो करते नही,
मुँह के बडे लबार ।
काला मुँह हो जायगा,
साई के दरबार ।।

केवल वेष देखकर किसी को 'गुरु' नहीं मान लेना चाहिये । कहावत है :-

"पानी पीजे छानकर !
गुरु कीजे जानकर !!"

विवेक से जान-पहिचानकर ही हमे 'गुरु' का निर्णय करना चाहिये । स्वामी सत्यभक्त ने लिखा है :-

बिछा हुआ है, जगत मे
कु गुरु जनों का जाल ।
उसे तोडने के लिए
ले विवेक-करवाल ।।

ज्ञान नही; सयम नही
और न पर-उपकार ।
वे कु साधु गुरुवेष मे
है पृथ्वी के भार ।।

इसका आशय यह है कि जिसके जीवन मे ज्ञान, सयम और परोपकार विद्यमान हो, वही गुरु है ।

मूर्तिकार अपनी कला के द्वारा पत्थर को प्रतिमा मे परिवर्तित कर देता है । पत्थर को छैनी के तीव्र प्रहार सहने पडते है, तभी वह मूर्ति के रूप मे पूज्य बनता है । इसी प्रकार गुरु अपने शिष्य को दानव से मानव और मानव से महामानव बनाता है । गुरु की डाँट-फटकार और उसकी छडी के प्रहार सहकर ही शिष्य सुयोग्य विद्वान् बनता है :-

गीर्भिर्गुरूणा पुरुषाक्षराभि -
र्निपीडिता यान्ति नरा महत्त्वम्
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणाम्
न जातु मौलौ मणयो विशन्ति ।।

(गुरुओं की कठोर अक्षरों वाली फटकार से पीडित होने वाले शिष्य ही महान् बनते हे । जो कसौटी पर घिसी नहीं गईं, वे मणियाँ कभी राजाओं के मुकुट मे स्थान नहीं पातीं !)

गुरु का उपदेश डायनेमिक फोर्स हे, जिससे गति हो सकती हे । गुरु का आदेश वह रसायन हे, जिससे शिष्यका आध्यात्मिक जीवन परिपुष्ट होता हे; मानव असामान्य बन जाता हे, वह प्रभुता के पथ पर चल सकता हे- प्रभुता पा सकता हे । मानव के हृदय मे छिपी हुई दिव्यता गुरुसमागम से बाहर निकल पडती हे । गुरु की अनुपस्थिति मे भी श्रद्धा अपना कार्य करती रहती हे ।

क्षत्रिय न होने के कारण एकलव्य को द्रोणाचार्य ने शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया; किन्तु एकलव्य इससे निराश नही हुआ । उसने द्रोणाचार्य की एक मूर्ति मिट्टी से बनाकर जगल मे किसी जगह उस की स्थापना कर दी और श्रद्धापूर्वक अन्त. करण के आदेश को गुरु का आदेश मानकर धनुर्विद्या व प्रायोगिक अभ्यास करने लगा । फलस्वरूप वह द्रोण के प्रिय शिष्य अर्जुन से भी अधिक निपुण बन गया । द्रोणाचार्य को भी उसकी कुशलता देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पडी थी !

महाभारत के इस अनुपम दृष्टान्त से सिद्ध हो जाता कि गुरु के प्रति श्रद्धा मे केसा चमत्कार होता हे !

किन्तु कोरी श्रद्धा से ही जीवन मे उन्नति हो जायगी ऐसा भ्रम किसी को नहीं रखना चाहिये । श्रद्धा के बाद गुरु उपदेश को अपनाना भी जरूरी हे । आचरण से ही जीवन आदर्श बनता हे । गुरु सहिष्णुता का उपदेश देते हे और फिर डॉटते फटकारते हे । क्यो ? सहिष्णुता को अपने जीवन मे हमने कितना अपनाया हे ? इसकी परीक्षा लेने के लिए !

एक शिष्य ने आश्रम मे झाड़ू लगाकर कचरा एक टोकरी मे भरकर रखा दिया; परन्तु दूसरे किसी सेवाकार्य मे उलझ जाने के कारण टोकरी वहीं पडी रह गई । कचरा फेकने की बात याद नहीं रही ।

कुछ समय बाद प्रज्ञाचक्षु गुरुजी उधर से निकले और टोकरी से टाँग टकराई तो गिर पडे । इस पर गुरु ने शिष्य को लाठी से खूब पीटा । शिष्य हटा नही और क्षमा मागते हुए शान्ति से प्रहार सहता रहा । लाठी की चोट का चिन्ह शिष्य की पीठ पर जीवन भर के लिए अकित हो गया । लोगो के पूछने पर वह शिष्य बडे गर्व से कहा करता था कि यह तो मेरे गुरुजी का प्रसाद हे !

गुरूजी थे- श्री विरजानन्दजी सरस्वती और शिष्य का नाम था -

स्वामी दयानन्द सरस्वती । वे जानते थे कि शिष्य को सुधारने के लिए गुरुजी कितने भी क्षुब्ध हो जाय; परन्तु उन के हृदय मे द्वेष नहीं होता । वहाँ केवल प्रेम और वात्सल्य ही भरा रहता है :-

गुरू कुँभार सिख कुम्भ है,
गढ-गढ काढै खोट ।
अन्दर हाथ सहार दै
ऊपर मारे चोट ।।

गुरु कुम्हार है और शिष्य घडा । घडे पर कुम्हार चोट लगाकर खोट निकालता है और एक हाथ से घडे के अन्दर उसे सहारा भी देता है । मन मे वात्सल्य रखकर माँ जिस प्रकार बेटे की पिटाई करती है, उसी प्रकार गुरु भी करता है । कु गुरु की बात अलग है । समझदार व्यक्ति कु गुरु से बचने का प्रयास करते है । कु गुरु शिष्यों के अन्धविश्वास का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते है ।

एक बुद्धिमान् पढा लिखा निर्धन युवक था । उसे अर्धांगिनी की तलाश थी । एक सेठ इस शर्त पर अपनी कन्या से उसका विवाह करने को तैयार था कि वह धर्मान्तरण कर ले । युवक ने सोचा कि धर्म तो आचरण की चीज है । धर्म बदलने से आचरण नहीं बदलेगा । अच्छे आचरण का कोई धर्म विरोध भी नही करेगा; इसलिए धर्मान्तरण की उसने स्वीकृति दे दी ।

विवाह की तैयारियाँ होने लगी । वर और कन्या एक दूसरे को चाहते थे । विवाह मण्डप मे जाने से पूर्व युवक से कहा गया कि वह स्नान कर के शुद्ध वस्त्र धारण कर ले और फिर गुरुजी के पास चलकर गुरुमन्त्र ग्रहण कर ले । ऐसा करने से मान लिया जायगा कि धर्मान्तरण हो चुका । फिर विवाह विधी सम्पन्न की जायगी ।

युवक ने वैसा ही किया । शुद्ध वस्त्र पहिनकर वह उस स्थान पर गया जहाँ सेठजी के गुरुजी बिराजमान थे । शेठजी के संकेत पर गुरुजी ने युवक के कान मे गुरुमन्त्र सुन दिया । मन्त्र छोटा-सा था । याद भी हो गया ।

युवक ने पूछा :- "इस मन्त्र के जाप से क्या लाभ होगा ?"

गुरु :- "स्वर्ग मिलेगा ।"

युवक :- "क्या सचमुच मिलेगा ?"

गुरु :- "अरे भाई ! इस मन्त्र के जप से तो वैकुण्ठ तक मिल जाता है !"

युवक :- "अच्छी बात है। इतना अभीष्ट उत्तम मन्त्र पाने की खुशी में आज मैं आपको दिल्ली की दक्षिणा देता हूँ।"

गुरु :- "दिल्ली क्या तेरे बाप की है ?"

युवक :- "तो क्या स्वर्ग और वैकुण्ठ आपके बापके है ?"

गुरु निरुत्तर हो गया। सभी सुनने वाले ठहाका मार कर हँस पड़े। सेठ ने बिना धर्मान्तरण किये ही कन्या विवाह दी। ऐसे लोभी गुरु से भला कौन बचना नही चाहेगा ?

साधनों का सदुपयोग

मनुष्य को पॉच उत्तम साधन प्राप्त हुए है :- बुद्धि, काया, मन, धन और भाषा । इनके सदुपयोग पर ही दुर्लभ मानव भव की सफलता निर्भर हे ।

शरीर मे मस्तिष्क का स्थान सब से ऊपर है; क्योंकि उसका महत्त्व सब से अधिक है । मस्तिष्क की शक्ति को बुद्धि कहते है । वही कार्य-अकार्य का निर्णय करती है । उसी के आदेश से शरीर की समस्त गतिविधियों का सचालन होता है । धारणा या स्मृति भी उसी का कार्य हे । हम महापुरुषो के विचारो को समझने के लिए शास्त्रो का अध्ययन करे और अपने लिए कर्त्तव्य का निर्णय करे- अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित करे तो यही हमारी बुद्धि का सदुपयोग होगा । प्रभु महावीर ने कहा था :-

"पण्णा समिक्खए धम्म ।।"

(बुद्धि, धर्म की समीक्षा करे)

धर्म का अर्थ है- सदाचार का कर्तव्य । बुद्धि ही धर्म का निर्णय कर सकती हे । वही हमे रूढियो और अन्धविश्वासो से बचा सकती हे । वही भूले-भटके लोगो का ठीक-ठीक मार्ग दर्शन कर सकती हे । वही मानसिक दुर्बलताओ को नष्ट करने का साहस उत्पन्न कर सकती हे । वही सकटो मे सुरक्षा का उपाय सुझा सकती है ।

भवन की सातवीं मजिल के एक कमरे मे खिडकी के निकट कुर्सी पर बेठे युवक को एक दुष्ट ने पिस्तौल दिखाते हुए आज्ञा दी - "यहाँ नीचे कूद पडो; अन्यथा गोली मार दूँगा !"

सकट की इस घडी मे यदि युवक व्याकुल हो जाता तो उसे मरना पडता; परन्तु उसने बुद्धि का उपयोग किया । फल स्वरूप उसे एक उपाय सूझ गया ।

मुस्कुराते हुए वह बोला :- "अरे भाई ! ऊपर से नीचे तो सभी कूद लेते है । यह कोई बडी बात नही है । मै तो नीचे से ऊपर उछलकर आ सकता हूँ- मै हाई जम्प मे एक्सपर्ट हूँ ।"

दुष्ट ने कहा :- "अच्छा ! तो ऐसा ही कर के दिखा दो ।"

यह सुनते ही दुष्ट को खिडकी के निकट खडा करके युवक कमरे मे बाहर निकल आया । दुष्ट ने सोचा कि वह उछलने की कला दिखाने के लिए नीचे जा रहा है; किन्तु युवक ने बाहर निकलते ही दरवाजा बन्द

कर के उस पर ताला लगा दिया । फिर फोन कर के दुष्ट को पुलिस वालों के हाथ सौंप दिया । इस प्रकार बुद्धि के उपयोग से अपनी जान बचाने मे सफलता पाई ।

दूसरा साधन है - काया । यह नश्वर है- परिवर्तन शील है- निस्सार है और है रोगो का घर । ऐसी काया से दूसरो की सेवा करनी चाहिये। सेवा या वैयावृत्य को आभ्यन्तर तप का एक भेद माना गया है । यदि कोई शक्तिशाली दुष्ट किसी निर्बल को पीट रहा हो तो अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग कर के हम उसकी रक्षा कर सकते है । यही काया का सदुपयोग है ।

तीसरा साधन है- मन । इस मे मनन करने की शक्ति होती हे । एक पाश्चात्य विचारक ने लिखा है :-

"निर्णय शीघ्र करो; परन्तु देर तक सोच लेने के बाद !"

सोचने-विचारने का जो कार्य करता है, वह मन है । निर्णय बुद्धि करती हे । न्यायाधीश के समान, परन्तु वकीलो की तरह पक्ष-विपक्ष मे युक्तियाँ प्रस्तुत करने वाला मन है । मन ही इन्द्रियो को विषयो की ओर आकर्षित करता है, इस लिए साधुसन्त उसे वश मे रखने की शिक्षा देते है । कबीर साहब कहते है कि मन को ईश्वर की ओर या मोक्ष की ओर घुमाना ही उसका सदुपयोग है :-

कबिरा माला काठकी
कहि समुझावै तोय
मन न फिरावै आपणा
कहा फिरावै मोय ?
माला फेरत जुग गया
मिटा न मन का फेर
कर का मन का डारि दै
मन का मनका फेर ।।

प्राचीन शास्त्राकारों ने कहा है :-

"मन एव मनुष्याणाम्
कारण बन्धमोक्षयोः ।।"

(बन्ध और मोक्षका कारण मनुष्यो का मन ही हे)

यदि किसी जानवर (पशु) को बन्धन से मुक्त कर दिया जाय तो वह

खुशी के मारे उछलने लगता है- पक्षी भी पिंजरे से छूटने पर चहकने लगता है; परन्तु मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो क्षणिक सुख की लालच में पड़कर सांसारिक बन्धन में फँसा रहना चाहता है ! स्थायी सुख वाले मोक्ष की ओर वह आगे नहीं होता !

चौरासी लाख जीवयोनियों में भटकते हुए जब बहुत अधिक पुण्य का संचय हो जाता है, तभी बहुत मुश्किल से मानवभव मिलता है । मोक्ष की साधना इसी भव में संभव है; अन्यथा पुण्य-पाप का फल भोगने के लिए जीव देवगति, नरकगति और तिर्यंच गतिमें शटल कोक (Shuttle Cock) की तरह इधर-उधर भटकता रहता है । आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान भी वहीं करता है ।

यदि मन में अशान्ति हो तो पेट में अजीर्ण हो जाता है, जिससे समस्त शारीरिक रोग पैदा होते है । स्वस्थ रहने के लिए मन को सदा शान्त रखना चाहिये । ध्यान रखना चाहिये कि उस में सदा सद्विचार ही भरे रहें । यही उसका सदुपयोग है ।

चौथा है - धन । इन्द्रियों के लिए विषय-सुख की सामग्री जुटाना धन का दुरुपयोग है और उस से दूसरों की मदद करना बीमारों की चिकित्सा में उसे लगाना धर्मस्थान, प्याऊ, कूँआ, सदाव्रत (दानशाला), पाठशाला, छात्रवृत्ति, प्रतियोगिता, पुरस्कार, सद्ग्रन्थ प्रकाशन, सत्संग आदि में उसे खर्च करना उसका सदुपयोग है ।

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ एक डाक्टर थे; इसलिए रोगियों का इलाज भी किया करते थे। एक दिन कोई महिला अपने बीमार पतिदेव का इलाज कराने के लिए उन्हें घर बुला ले गई ।

कवि को यह समझने में देर नहीं लगी कि गरीबी से उत्पन्न मानसिक चिन्ता ही उस की बीमारी का मूल कारण है ।

कवि यह कहते हुए अपने घर लौट गये कि मैं जल्दी ही एक दवा का पैकेट भेजूँगा । उसके सेवन से इन का स्वास्थ्य ठीक हो जायगा ।

कवि के भेजे हुए पैकेट को जब उस महिला ने खोला तो उस में दस दस स्वर्णमुद्राएँ निकलीं ।

उन्हें देखकर ही आधी बीमारी गायब हो गई । पति-पत्नी ने मन-ही-मन कवि की उदारता को प्रणाम किया ।

इसी प्रकार एक जीवन घटना हजरत अली की है । वे एक दिन किसी मस्जिद में प्रवचन कर रहे थे कि सहसा किसी अरब ने वहाँ आकर गालियों की बरसात कर दी । श्रोता उत्तेजीत होकर उस की पिटाई

करना ही चाहते थे कि अलीने कहा :- "इसे पीटिये मत; किन्तु प्यार से पूछिये कि क्या घर मे उस के किसी कुटुम्बी की मृत्यु हुई हे, क्या उसके सिर पर कोई कर्जा है । क्या उसे भरपेट भोजन हर रोज मिल जाता है ?"

अरब ने बताया कि उसके घर मे जवान बेटे की मृत्यु हुई हे, कर्जा भी है और भरपेट भोजन भी उसे नहीं मिल पाता ।

"यही कारण है कि उसका मन अशान्त रहता है और वह गालियाँ देता है" । ऐसा कहते हुए अली ने तत्काल अपने घर से मॅगवाकर उसे इतना धन दे दिया कि उससे कर्जा उत्तर जाय, कुटुम्बियो के लिए महीने भर की भोजन की व्यवस्था हो जाय और व्यापार के लिए कुछ पूजी भी बच जाय ।

उसी दिन वह दुष्ट से शिष्ट बन गया । अली की तरह धन का सदुपयोग करने वाले धन्य है ।

पाँचवाँ साधन है- भाषा । यही पशुपक्षियो से मनुष्य को अलग करती है । अपने भावो को सूक्ष्मता से विस्तार के साथ प्रकट करने की क्षमता मनुष्य की भाषा मे है । अपने शब्दो से मनुष्य दूसरो की निन्दा भी कर सकता है और प्रशसा भी गालियों की बौछार भी कर सकता हे और गुणगान भी, कठोर शब्दो के प्रयोग से अपने दुश्मनो की सख्या भी बढा सकता है और कोमल मधुर शब्दो के द्वारा अधिक से अधिक दोस्त भी बना सकता है ।

विवेकी सज्जन अपनी भाषा को हमेशा सदुपयोग करते हे । वे अहितकर सत्य नहीं बोलते और हितकर असत्य भी बोलते है । वे जानते है कि प्रमुख लक्ष्य जनहित है । उनके सामने यह सूक्ति रहती है :-

"सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात्
न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।।"

(सच बोले, मीठा बोले, किन्तु कटु सत्य न बोले)

परोपकार

परोपकार सब से बडा धर्म है और समस्त शास्त्रो का सार है ।

करोड़ो धर्मशास्त्र सौ बैलगाडियो मे लाद कर एक पडित प्रवचनार्थ किसी राजमहल मे पहूँचा, उसे राजा ने कहा :- "मेरे पास इतना समय नहीं है कि मे प्रतिदिन कुछ घटे शास्त्र श्रवण के लिए निकाल सकू । केवल एक मिनिट मे आप जो कुछ समझा सके, समझा दीजिये ।"

इस पर पडितजी ने कहा :- "सुनिये

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि
यदुक्त ग्रन्थकोटिभिः ।
परोपकारः पुण्याय
पापाय पर-पीडनम् ।।

(करोडो धर्मग्रन्थो मे जो कुछ कहा गया है, उसे मै आधे श्लोक से प्रकट कर देता हूँ कि परोपकार से पुण्य और पर पीडा से पाप होता है)

पडितजी के चातुर्य से परिपूर्ण इस सारगर्भित उत्तर से प्रसन्न होकर राजा ने यथोचित्त पुरस्कार के द्वारा उन्हे सम्मानित किया ।

इस कथा से परोपकार का महत्त्व समझा जा सकता है ।

अशुभ कर्मो के उदय से परिस्थिति प्रतिकूल हो; फिर भी हमे परोपकार से मुँह नहीं मोडना चाहिये । शुभ-कर्मोदय के बाद परिस्थिति निश्चय ही अनुकूल बन जायगी ।

पारस्परिक अविश्वास के कारण आज प्रेम नष्ट हो गया है, जो परोपकार का प्रेरक है । यदि हम दूसरो का उपकार नहीं करते तो यह आशा कैसे कर सकते है कि दूसरे हम पर उपकार करेगे ।

उपकार तन और धन के ही नहीं, वचन से भी होता है । मधुर शब्द हर्ष उत्पन्न करता है और कटुक शब्द शोक । कहा है :-

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः
स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति !"

(अच्छी तरह जाना हुआ एक शब्द यदि ठीक (समय पर ठीक ढग से) प्रयुक्त किया जाय तो वह स्वर्ग मे और ससार मे इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होता है)·

जेसे लोगो के सहवास मे व्यक्ति रहता है, वैसी ही बोली सीखता हे। जो तोता सन्यासी के आश्रम मे पलता है, वह शिष्ट भाषा बोलता है; किन्तु जो तोता कसाई के बूचडखाने मे पलता है, वह बुरी-बुरी गालियाँ बकता है । एक तोते ने किसी राजा से कहा था :-

"अह मुनीना वचन शृणोमि
गवाशनाना स शृणोति वाक्यम् ।
न चास्य दोषो न च मद्गुणो वा
ससर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।।"

(मै मुनियो के वचन सुनता हूँ और वह कसाइयों के ! उसका कोई दोष नहीं है और मेरा कोई गुण नहीं है । हे राजन् ! गुण -दोष ससर्ग से उत्पन्न होते है)

अच्छे लोगों के ससर्ग मे रहने से अच्छे विचार सूझते हे । विचारो के अनुसार वचन प्रकट होते है । बहुत गुस्सा आने पर भी गाँधीजी अधिक से अधिक "पागल" शब्द का ही प्रयोग कर पाते थे ।

सुभाषा से उन्नति होती है और कुभाषा से पतन । जिस जीभ से जगत् की आग शान्त हो सकती हे उसी से खून की नदियाँ भी बह सकती हे, इस लिए हमेशा सोचविचार कर ही बोलना चाहिये :-

"बोली बोल अमोल है
बोल सके तो बोल ।
पहले भीतर तौलकर
फिर बाहर को खोल ।।"

इस विषय मे "सोख्त," नामक शायर ने कहा था :

"आदत है हमे बोलने की तौल-तौल कर ।
है एक-एक लफ्ज बराबर वजन के साथ !"

यह आदत उन्हीं सज्जनो मे होती है, जो विवेक के छन्ने से विचारो को छान कर फिर बोलते है । एक इग्लिश विचारक ने सुझाव दिया है :-

"Run before you jump and
think before you speak—"

(कूदने से पहले दौडो और बोलने से पहले सोचो)

किसी राजा को सपने मे दिखाई दिया कि उसकी बत्तीसी गिर गई है । दूसरे दिन स्वप्नफल पाठको से पूँछने पर एक ने कहा :- "आपके बत्तीसो कुटुम्बी एक के-बाद-एक मर जायँगे !"

राजा को इससे बहुत अधिक शोक हुआ; किन्तु तीसरे दिन दूसरे विद्वान् ने जब यह कहा कि- "आपकी उम्र आपके सभी कुटुम्बियो से अधिक है । कोई भी कुटुम्बी आपका महाप्रयाण नहीं देख सकेगा !" तो राजा को बहुत प्रसन्नता हुई ।

बात दोनो विद्वानो ने एक ही कही; परन्तु पहले ने अविवेकपूर्वक कहा, दूसरे ने विवेकपूर्वक । इसी लिए उनके बोलने का प्रभाव राजा पर अलग-अलग हुआ ।

किसी की गुप्त बात प्रकट करने से यदि उसकी हानी होने की सभावना हो तो सच्ची होने पर भी वह बोलने योग्य नहीं । दूसरों को लाभ पहुँचाने वाली बात बोलनी चाहिये, हानि पहुँचाने वाली नहीं; क्योंकि किसी को हानि पहुँचाना पाप है; इसलिए स्वय महाश्रमण महावीर ने अपने श्रीमुख से फरमाया है :-

"सच्चावि सा न वत्तव्वा
जओ पावस्स आगमो ॥"

(जिससे पाप होता हो, ऐसी सच्ची वाणी भी नहीं बोलनी चाहिये)

वचनो का प्रयोग मन्त्र की तरह होना चाहिये, जिसमे शब्द कम हों और अर्थ गम्भीर हो । धन के घमड मे बहुत अधिक बोलने पर लाखों की लागत के महल मे रहनेवाले भी कौडी के लिए कोर्ट के दरवाजे खटखटाते है ।

वाणी का सयम वही रख सकता है, जिसका अपने विचारो पर सयम हो।

चावल के एक कण के आकार वाला तान्दुल मत्स्य सातवीं नरक मे क्यो जाता हे ? मगरमच्छ की पलकों पर बैठा हुआ वह देखता हे कि मगर के विशाल मुँह के खुलते ही बहुत-सी छोटी-छोटी मछलियाँ बाहर निकल कर इधर-उधर भाग जाती है तो वह सोचता है - "कैसा है यह मूर्ख ? इसे अपना मुँह भी ठीक से बन्द करना नहीं आता । यदि इस मगर के स्थान पर मै होता तो अपने मुँह मे प्रविष्ट एक भी मच्छी को बाहर नही निकलने देता !"

इस प्रकार रौद्रध्यान से वह अपनी आत्मा को कर्मशृखलाओं से जकडता रहता है और फिर भोगता है- सातवे नरक के दु:ख !

मोक्ष का सुख सर्वोत्तम है- शाश्वत हे । मनुष्य-भवमे ही मोक्ष की साधना की जा सकती हे; अत: स्वर्ग के देव भी मनुष्यभव पाने के लिए लालायित रहते है । स्वर्ग के देवो का सुख भी अस्थायी होता है, क्योकि पुण्य के क्षीण होने पर उन्हे मनुष्य लोक मे जन्म लेना पडता हे :-

"क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति ।।"

पुणिया श्रावक को स्वर्ग का सुख तो सहज ही मिल सकता था; परन्तु वह शाश्वत सुख चाहता था, इसलिए वह प्रभु के चरणो मे समर्पित हो गया :-

लभेद् यदयुत धन तदधन धन यद्यपि
लभेत नियुत धन निधनमेव तज्ञायते ।
तथा धनपरार्धक तदपि भावहीनात्मकम्
यदक्षर पदद्वयान्तरगत धन तद्धनम् ।।

[अयुत ('अ' से युक्त) धन तो 'अधन' हे और नियुत ('नि' से युक्त) धन 'निधन' (मृत्यु) है । यदि परार्ध (अगला आधा अश) धन (न) प्राप्त किया जाय तो वह अभावात्मक है, इसलिए अक्षर (ईश्वर) के दोनो पदो (चरणों) के बीच मिलने वाला (वर्णमाला मे 'पद' अर्थात् द और प के बीच 'धन' ही रहता है) मोक्ष रूपी धन ही सच्चा धन हे ।]

यह मोक्ष धन तो भक्त अपने लिए चाहते है और जो क्षणिक धन उनके पास होता है, उसे परोपकार मे लगा देते है । परिग्रह की ममता नष्ट करने के लिए वे दान करते है । बिन्दु- बिन्दु से सिन्धु बन जाता है । सिन्धु अपना जल उन बादलो को देता है, जो प्रसन्नतापूर्वक उसे धरती पर बरसा देते है । धरती भी अन्न स्वय न खाकर किसानो को दे देती है । किसान अपने अनाज के ढेरो से जनता की भूख मिटाते हे । परोपकार की यह परम्परा पवित्र है ।

परोपकारी अपनी शक्ति का उपयोग सर्जन मे करता है, सहार मे नही। भोग तो सभी प्राणी कर रहे है । उस मे साहस की आवश्यकता नहीं होती । साहस की आवश्यकता होती है- दान मे, त्याग मे, परोपकार मे।

परोपकार न करनेवाला धनवान् भी निर्धन हे- विद्वान् भी मूर्ख हे- जीवित भी मृतक है ! सभी प्राणियों को चाहिये कि तन-मन-धन-से सदा यथाशक्ति परोपकार करते रहे ।

आत्मज्ञान

आत्मा के विषय मे प्रवचन करना सरल है; किन्तु आत्म बोध के अनुरूप व्यवहार कठिन हे । ज्ञान की परीक्षा व्यवहार से ही होती हे ।

किसी की प्रशसा मे बोलना हो तो पॉच मिनिट भी मुश्किल से मिलते है और निन्दा के लिए घटे निकल आते है । निन्दा का रस हमे पागल बना देता है । दूसरों की निन्दा करके लोग यह सोच कर प्रसन्न होते है कि हम उनसे अच्छे है । वे भूल जाते हैं कि निन्दा अपने आप मे निन्दनीय है । एक शायर ने लिखा है :-

मै बताऊ आपको अच्छोंकी क्या पहिचान है
जो है खुद अच्छे वो औरों को नही कहते बुरा !

एक अच्छा आदमी देश को आबाद कर सकता है तो बुरा उसे बर्बाद कर डालता है ।

रूपी देह की अपेक्षा अरूपी आत्मा का महत्त्व अधिक है तो फिर लोग क्यो शारीरिक सुन्दरता पर मुग्ध होते है ? वे क्यों नहीं सोचते कि सुन्दर शरीर वाला भी दुर्जन हो सकता है और कुरूप शरीरवाला सज्जन भी हो सकता है ? सुन्दर शरीर तो एक वेश्या का भी होता है, परन्तु समाज मे उसका सम्मान नहीं होता ! यह जानते हुए भी लोग सुन्दर शरीर के प्रति क्यों आकर्षित होते है ? एक कवि के शब्दो मे :-

मनोहर दीखता यह देह पर सारा घिनौना है ।
अशुचि-भडार चिकने चामपर थे व्यर्थ भरमाये ।।

– सत्यप्रेमी

ऐसा वे क्यों नही सोचते ?

शुभाशुभ कर्म आत्मा के साथ लगे रहते है । हजारो गाये खडी हों, फिर भी बछडा उनमे से अपनी मॉ को पहिचान लेता है और उसके पीछे-पीछे चलने लगता है; उसी प्रकार कर्म आत्मा के पीछे चलते है । इसीलिए कोई सुखी है, कोरई दुखी है । आपके हृदय मे दुखियों को देखकर अनुकम्पा नही आती ?

अपनी इन्द्रियो का गुलाम क्यो होते है ? इन्द्रियों को वह खिड़की-दरवाजों की तरह क्यो नहीं देखता आत्मा मे वह दुर्भावों को क्यों आने देता

अयुत = दस हजार, नियुत = एक लाख, परार्ध = महाशख या ब्रह्मा की आधी आयु के वर्षो की सख्या के बराबर सख्या

है ? आत्मा कोई कचरा-पेटी नहीं है कि उसे कैसे भी दुर्भावों से भर दिया जाय !

उदाहरणार्थ आँख ही उन्नति और अवनति का केन्द्रबिन्दु है । आँख से प्रभु-प्रतिमा के दर्शन करके हृदय मे उत्तम भाव भी लीये जा सकते हे और भौतिक या शारीरिक सौन्दर्य को देखकर हृदय मे कामना का कीचड भी भरा जा सकता हे । जो विवेकी है, वह हृदय को मलिन करने की भूल कैसे कर सकता हे ?

दो दृष्टियाँ होती है- मिथ्या और सम्यक् । मिथ्या दृष्टि जीव को सर्वत्र भोगसुख दिखाई देता है और सम्यग्दृष्टि को आत्मिकसुख ।

किसी बगीचे मे गुलाब के पौधे को देखकर एक बालक रोने लगा । कारण पूँछने पर उसने कहा .- "इतने सुन्दर फूल के साथ काटे निकल आये !" दूसरा बालक उसी पौधे को देखकर हँसने लगा । उसका कहना था :- "इन तीखे काँटो मे भी कितने सुन्दर फूल खिल रहे है ?"

सम्यग् दृष्टि के अभाव का ही यह दुष्परिणाम है कि हम याद रखने की बाते भूल जाते है और भूल जाने की बाते याद रखते हे । व्याख्यान मे सुनी प्रभु महावीर की वाणी घर जाते ही भूल जाचे हे और यादि किसी ने कोई कठोर वचन कह दिया हो तो उसे जीवन-भर याद रखते है और परेशान होते रहते है । प्रभु की वाणी का एक वाक्य भी उद्धार कर सकता है - यदि सुनकर उसे याद रखा जाय ।

मरने से पहले, रोहिणीया चोर से, उसके पिता ने कह दिया था कि महावीर की वाणी कभी मत सुनना ।

एक दिन रोहिणेय को उसी मार्ग से निकलना पडा, जिसके एक और प्रभु की देशना चल रही थी । उसने कानों मे उँगलियाँ डाल लीं, किन्तु भागते समय पाँव मे एक काँटा चुभ गया । कानों से हाँथ हटाकर उसने झटपट काँटा निकाला और फिर भाग खडा हुआ ।

दूसरे दिन वह पकड़ लिया गया । राजा ने अपराध कबूल करवाने के लिए एक नाटक किया । रात को अनिन्द्य सुन्दरियो के बीच उसे छोड दिया गया । एक सुन्दरी ने उससे कहा :- "पुण्योदय से आप मरकर इस स्वर्ग मे आये है । हम सब अप्सराएँ आपकी सेवा मे मौजूद है । यदि आपने पृथ्वीपर कोई बुरा काम किया हो तो बता दीजिये । हम इन्द्रदेव से आप को क्षमा दिला देगी । अन्यथा आप को नरक मे जाना पडेगा !"

रोहिणेय जब काँटा निकालने के लिए रुका था, तव कुछ वाक्य उसके कानो मे पड गये थे । प्रभु ने देवों का लक्षण बताया था कि जमीन पर

उनकी परछाई नहीं गिरती- उनके गले का पुष्पहार नहीं मुरझाता- वे जमीन से कुछ ऊपर खडे रहते है और पल के कभी नहीं झपकाते ।

रोहिणेय को देवो का लक्षण याद आ गया । लक्षण के अनुसार एक भी बात उन कथित अप्सराओ मे मौजूद नहीं थी ।

वह समझ गया कि मेरे मुँह से अपराध कबूल करवाने के लिए ही यह सब नाटक किया जा रहा है । वह सभल गया । बोंला :- "मैने सब पुण्य के ही कार्य किये हैं और यह स्वर्ग पाया है । पाप तो एक भी नही किया ।

परिणामत: वह छूट गया । घर पर आकर उसने विचार किया कि दो मिनिट प्रभुवाणी सुनने से यदि मेरी जान बच सकी तो पूरा प्रवचन सुनने के कितना लाभ होगा ? उसका जीवन परिवर्तित हो गया और वह आत्मकल्याण करने मे सफल हुआ ।

हम क्यो नहीं समझते कि हमारे कान ऐसी पवित्र वाणी सुनने के लिए ही है ? हम जो कुछ सुनते है, वह हमारे अवचेतन मन में भर जाता है और प्रसग आनेपर प्रकट होता है । उससे हमारा भविष्य बनता-बिगडता है । ऐसा जान लेने पर भी क्यो हम श्रुतज्ञान की और ध्यान न देकर निन्दा सुनने मे या कामनावर्धक सगीत सुनने मे रस लेते है ?

देश के रक्षक प्रताप को भामाशाह ने अपनी समस्त सम्पत्ति दे दी ! क्षणिक सम्पत्ति से जितनी भलाई हो सके करनी चाहिये :-

परोपकाराय सता विभूतय: ।

(सज्जनो की सम्पत्तियाँ परोपकारके ही लिए होती है)

यह जानकर भी हम क्यो परिग्रह के पीछे पडे रहते है ? क्यों उसके लिए दौड-धूप करके अशान्ति मोल लेते है ? क्यों जीवनपुष्प को मुरझा जाने देते है ?

आनार्यदेश मे धर्मोपदेश के लिए जाने को तैयार साधु क्षेमंकर से गुरुजी ने कहा :- "वहाँ का मार्ग ऊबड-खाबड है, भोजन और जल भी समय पर और पर्याप्त नही मिल सकेगा, वहाँ के लोग भी बडे क्रूर है । वे गालियाँ देगे, अपमान करेगे और मारपीट तक करेगे !"

इस पर क्षेमकर ने सारे परिषह एक फूल की तरह हँसते हुए सहने और हर हालत मे अपने कर्तव्य का पालन करने का सुदृढ सकल्प प्रकट किया । फल स्वरुप गुरुदेव क आदेश से वे अपने उद्देश्य की पूर्ति मे लग गये और सफल रहे ।

वेसे कोई किसी को सुखी या दुःखी नहीं कर सकता । शुभाशुभ कर्मो से ही अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ बनती है ।

झरोखे मे खडी बहिन ने मुनिवेष मे गुजरते भाई को देखकर कहा :- "इनका शरीर पहले कैसा सुन्दर था और तपस्या के कारण अब सूखकर कैसा कॉटा हो गया हे !"

यह सुनकर राजा को आशका हुई कि वह मुनि कही इसका पूर्वप्रेमी तो नहीं ? राजा ने हुक्म दिया कि उस साधु की चमडी खीचकर लाई जाय । सिपाही गये । कसाई को चमडी खींचने का काम सौपा गया । साधु ने शान्तिपूर्वक अपना तन कसाई को सौंप दिया और मन अरिहत को । मुनि ने कसाई को कह दिया :- "मेरी हड्डियोसे कहीं तुम्हारे हाथो मे चमडी उतारते वक्त चोट न लग जाय ।"

इस प्राणान्त उपसर्ग को द्वेषरहित माध्यस्थ्य भाव से सहने के फलस्वरूप मुनि के कर्म कट गये । उन्हे केवलज्ञान हुआ मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त हुआ ।

मुनि की रक्तरजित मुँहपत्ती को खाने की वस्तु समझकर एक चील ले उडी; किन्तु उसमे खाने योग्य कुछ भी नहीं था, इसलिए उसे चोच से छोड दिया । मुँहपत्ती झरोखे मे बहिन के पास गिरी । वह उसे देखकर मूर्छित हो गई । जब राजा को वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उ ने अपने विवेकहीन आदेश के लिए घोर पश्चात्ताप हुआ । अन्त मे राजा और रानी दोनो साधु- साध्वी बनकर आत्मकल्याण की साधना मे लग गये ।

इसे कहते है- आत्मज्ञान ! कहाँ है ऐसा आत्मज्ञान, जो केवल चर्चा मे नहीं, व्यवहार मे भी दिखाई दे ।

सच्चिदानन्द

परमात्मा को "सच्चिदानन्द" कहा जाता है । इस शब्द में तीन पद है- सत, चित् और आनन्द ।

सत् का अर्थ है - सत्ता या अस्तित्व, चित् का अर्थ चैतन्य है और आनन्द का अर्थ है - शाश्वत अखण्ड अनन्त सुख ।

सत् और चित् तो प्रत्येक जीवमे है; क्योकि उसका अस्तित्व है और वह जड से भिन्न है; परन्तु आनन्द के बदले उस मे क्षणिक सुख है । यही आत्मा से परमात्मा का अन्तर है ।

कहा जाता है :- "अप्पा सो परमप्पा ।।" (शुद्ध गुण स्वरुप अपनी सबो की आत्मा परमात्मा स्वरुप है) यदि विषयो से प्राप्त होनेवाले क्षणिक सुख के पीछे न पडकर आत्मा शाश्वत सुख की खोज मे लग जाय और उसे प्राप्त कर ले तो वह परमात्मा बन जाय । सन्त, साधु, ऋषि, मुनि, महात्मा, ज्ञानी, ध्यानी, दार्शनिक और भक्त जीवन-भर इसी साधना मे अर्थात् अनन्त सुख के अन्वेषण मे लगे रहते है ।

समुद्र मन्थन से प्राप्त अमृतकलश को कहाँ रक्खा जाय ? यह प्रश्न जब खडा हुआ तो जितने भी सुझाव आये, वे सब निरस्त हो गयe; क्योंकि सब जगह उसके नष्ट होने या चुरा लिये जाने की सम्भावना थी । अन्त मे मनुष्य के हृदय मे रखने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया । तब से आनन्द का बह अमृतकलश वही सुरक्षित रूप से पडा है; परन्तु अपने हृदय की और उसका ध्यान ही नहीं जाता, जहॉ वास्तव मे वह मौजूद है ।

फूल ने पुकारा :- "ऐ फल ! तू कहॉ है ?"

फुल बोला :- "तेरे हृदय मे छिपा हूँ !"

कवी रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस सवाद के द्वारा वही बात कही है ।

महात्मा कबीर कहते है :-

"मोकूँ कहॉ ढूँढे बन्दे
मै तो तेरे पास मे ।।"

अन्यत्र वे कहते है :-

मन मथुरा दिल द्वारका
काया काशी जान ।
दसों द्वारका देहरा
ता मे ज्योति पिछान ॥

वह आत्मज्योति आठ कर्मो के आवरण मे छिपी हुई है । इस आवरण को हटाने के लिए साधना करनी पड़ती है ।

कर्ममल से श्यामल आत्मवस्त्र को भक्तिजल से धोना है ।

गाय जंगल में दूब चरती है; परन्तु उसका मन बछड़े मे होता हे । नट रस्सी पर बिना आधार के चलता है – दौड़ता है – नाचता है, परन्तु उसका मन सन्तुलनपर रहता हे । पनिहार ने आपस मे कितनी भी बातें करती रहें, पर उनका मन घडें पर टिका रहता हे । ठीक इसी प्रकार दुनिया के सारे काम करते रहने पर भी भक्त का मन भगवान् पर टिका रहता है ।

जेसे झाडू लगाने से मकान स्वच्छ रहता है, वेसे ही जिनवाणी सुनने और याद रखने से विचार शुद्ध रहते है ।

शुद्धि और बुद्धि जिसमे नहीं होती, वही मनमाना व्यवहार करके दुखी होता है । भक्ति मे कैसी शक्ति होती है । एक दृष्टान्त द्वारा बताना चाहूँगा :-

किसी राजा ने प्रसन्न होकर अपने चाकर से मनमानी वस्तु मॉगने के लिए कहा । वह बोला :- "जब मै द्वारके बाहर अपनी ड्यूटीपर रहूँ और आप मेरे पास से निकले तब मेरे कानमे कहते रहे कि मे भगवान् को न भूलूँ । बस, यही मेरी मॉग हे ।"

राजा आते-जाते उस चाकर की इच्छा के अनुसार उसके कान मे कहने लगा- "तुम भगवान् को मत भूल जाना ।"

लोगों ने जब यह दृश्य देखा तो वे समझने लगे कि यह चाकर राजा को बहुत प्रिय है । हो सकता है, राजा ने इसे अपना गुप्तचर बना लिया हो । फल यह हुआ कि उस चाकर की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई । यह था – भक्ति का चमत्कार ।

सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की उपासना से जब मोक्ष मिल सकता हे, तब सासारिक प्रतिष्ठा क्यों नहीं मिलेगी ? वह तो बहुत साधारण वस्तु है ।

कलापी ने कहा था :- "श्रद्धा कभी निष्फल नहीं होती । उससे अचिन्तित कार्य भी पूर्ण होते हे । श्रद्धा जितनी अधिक गहरी होती हे, आत्मकल्याण भी उतना ही जल्दी होता है ।"

पहले पुस्तके कम थीं, श्रद्धा अधिक थी। आज पुस्तके बढ गई हे।

"तद्विद्धि प्रणिपातेन ।। - गीता

(प्रणाम करके 'उस' को जान लो)

पहले प्रणाम करके लोग ज्ञान प्राप्त करते थे; किन्तु आज ज्ञान प्राप्त करके भी प्रणाम करने मे सकुचाते है - लज्जाते है।

श्रद्धा से प्राप्त ज्ञान सयम की ओर ले जाता है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शाने लिखा है।

अपने कुटुम्ब के बालको के मुण्ड काटकर गमले मे लगाये तो अच्छा नहीं लगेगा। उसी प्रकार झाड या पौधे से फूल तोड कर उन्हे फूल दानी मे सजाना भी उचित नहीं है। सौन्दर्य दूर से देखने के लिए है, छू कर या मसलकर तहस-नहस करन के लिए नहीं। पुष्पो के सौन्दर्य और सौरभ को नष्ट करने का हमे क्या अधिकार है ?"

अहिसा की यह दृष्टि विचारकता से उत्पन्न हुई है। विचारकता से ही सयम आया था।

सुदर्शन शेठ मे - उनके यौवन पर मुग्ध होकर कपिला ने उसका लाभ उठाना चाहा। उसके जाल मे फँसकर भी वे जल मे कमल की तरह बच गये। बोले- "कपिला; ! मै नपुसक हूँ। मुझ मे वह पौरुष नहीं है, जिसकी कामना तू कर रही है।"

सुदर्शन सेठ की यह बात सयम की रक्षाके लिए थी, इसलिए असत्य होकर भी सत्य थी। स्वदारासन्तोष व्रत के धारक सुदर्शन सेठने किसी के घर अकेले न जाने की प्रतिज्ञा ले रक्खी थी। रूप और यौवन भी धन है। लुटेरो से इन्हे भी बचाने के लिए खूब सावधान रहना पड़ता हे।

जब कपिला दासी ने महल के झरोखे से सुदर्शन सेठ को मनोरमा सेठानी और बच्चो के साथ देखा तो उसके मन मे आग लग गई। वह गई कि झूठ बोलकर सेठ ने मुझे उस दिन धोका दिया था। भेड शरीर पर आग लग जाय तो वह इधर-उधर दौडकर सब जगह आग लगाने की कोशिश करती हे। ऐसा ही कपिला ने किया। उसने महारानी अभया की वासनाग्नि भडका दी। फलस्वरूप पौषधशाला मे जब सेठ ध्यान मे लीन थे, तभी उनका अपहरण करके उन्हे एकान्त कक्ष मे रानी के सामने उपस्थित कर दिया गया।

मन जल जैसा तरल हो तो छोटे से ककर से भी उसमे तरगे पैदा हो जाती है। इससे विपरीत यदि बर्फ जैसा सुदृढ हो तो पत्थर के प्रहार का भी उस पर कोई असर नही होता। सेठ का मन हिमशैल की तरह

शीतल शान्त और सुस्थिर था । रानी के हाव- भाव का, कटाक्षो का, कोमल शब्दों का एव अगप्रदर्शन का उनके मन पर कोई असर नहीं हुआ। इस प्रकार सारे प्रलोभन जब व्यर्थ रहे तब रानी ने अन्त मे भय का प्रयोग किया । उसने धमकी दी कि यदि मेरी इच्छा तृप्त नहीं की तो मै चिल्लाकर तुम्हे प्राणदड दिलवा दूँगी; किन्तु इस पर भी वे अविचलित रहे । शान्ति से प्रभु शान्तिनाथ का स्मरण करते रहे ।

रानी ने आखिर अपने हाथो से अपनी दशा बिगाड ली और सेठ पर बलात्कार का झूठा आरोप लगा दिया, राजा ने क्रुद्ध होकर शूली की सजा दे दी; किन्तु आखिर वही शूली उनके लिए सिहासन बन गई अर्थात् उनकी प्रतिष्ठा का कारण बनी । आज तक हम उनका यशोगान करते है-श्रद्धा से उनका नाम स्मरण करते है ।

इल्ली भ्रमरी का ध्यान करते-करते भ्रमरी बन जाती है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मा का ध्यान करते-करते स्वय भी परमात्मा बन जाती है । सयम मे जीवन पवित्र और वन्दनीय बन जाता है ।

हम जानते है कि चारित्र मोहनीय कर्म का उदय चारित्र ग्रहण करने मे बाधक बनता है; फिर भी यदि सकल्प सुदृढ हो तो सयम ग्रहण करना सरल हो जाता है । सकल्प मे से शक्ति अपने आप प्रस्फुटित होती है ।

हम इतने कमजोर हो गये हो कि हमारे लिए शय्या से उठकर चलना -फिरना तक असभव-सा हो गया हो; फिर भी यदि भवन मे आग लग गई हो तो यह सुनते ही तत्काल उठ कर बाहर भागने की शक्ति शरीर मे न जाने कहाँ से पैदा हो जाती है । यही बात सयम के लिए समझे ।

साराश यह है कि श्रद्धा, भक्ति, विनय और सुदृढ सकल्प के साथ सयम को अपनाने पर कोई भी मनुष्य स्वय सच्चिदानन्द बन सकता है ।

सत्संग

हवा के लिए कोई कमरा निर्धारित नहीं होता कि जब साँस लेना हो, उसमे चले जाएँ और शेष समय अन्यत्र रहे । उसी प्रकार धर्म के लिए कोई स्थान या अवस्था निर्धारित नहीं है । जेसे हवा सर्वत्र होती है, वेसे ही धर्म भी जीवन मे सर्वत्र होना चाहिये ।

अइमुत्ता मुनि, हेमचन्द्राचार्यजी आदि अनेक महापुरुष ऐसे हुए हे, जिन्होंने बचपन मे ही सयम स्वीकार कर लिया था । पहले से जो प्रकाश के मार्ग पर चल पडते है, वे धन्य हे । धर्माचरण उनके लिए सुगम होता है; परन्तु जो लोग सासारिक मोह-माया के ऑधेरे मे भटकने के बाद सयमसूर्य का प्रकाश पाते है, वे और अधिक धन्य है; क्योकि धर्माचरण उनके लिए दुर्गम होता है- अपने मन को मोक्षमार्ग की ओर मोडने के लिए उन्हे अधिक श्रम करना पडता है - अधिक तप करना पडता हे- अधिक सावधान रहना पडता हे ।

सयम पाने के लिए सयमी का सान्निध्य जरुरी है । हिन्दु मे कहावत है :- "खरबूजे को देखकर खरबूजा रग बदलता हे ।" यह सगका रग है, जो सब पर चढ़ता है । पारस के सम्पर्क से लोहा सोने मे बदल जाता है । पानी की बूद कमलपत्र पर हीरे की तरह चमकती है, सीपी मे पडे तो मोती बन जाती है और तप्त तवे पर पडे तों भाप बनकर उड जाती हे । नर्मदा नदी मे बहने वाले पत्थर शकर बन जाते है और ककर शालिग्राम ! ग्रीष्मकाल मे पथिक सघन वृक्ष की छाया मे केसा विश्राम पाता है ? निर्झर के निकट प्यासा व्यक्ति कैसी तृप्ति पाता हे ? जिज्ञासु भी ज्ञानी के पास वैसी ही तृप्ति पाता है ! मुमुक्षु भी, महापुरुषों के सान्निध्य वैसा ही विश्राम पाता है ! अर्जुनमाली दृढप्रहारी, चण्डकौशिक जैसे ो को भी यदि आत्मशान्ति प्राप्त होती है तो उसके मूल मे सत्सगति क अतिरिक्त और क्या है ?

सन्तो की सगति कितनी दुर्लभ है ? यह सन्त सुन्दरदासजी से जानिये। वे कहते है :-

तात मिले पुनि मात मिले सुत
भात मिले जुवती सुखदाई
राज मिले गज बाज मिले सुख-
साज मिले मनवाछित पाई ।

लोक मिले सुरलोक मिले विधि
लोक मिले वैकुण्ठ हि जाई
'सुन्दर और मिले सब ही सुख
सन्त-समागम दुर्लभ भाई ।।

जैसे पप से पानी ऊपर चढता है, वैसे ही सत्सग से मन ऊपर चढता है ऊध्वगामी बनता है; अन्यथा पानी की तरह मन का स्वभाव नीचे की ओर जाना है ।

मन मोम जैसा है । शास्त्र श्रवण के सस्कारों से उसे उत्तम ढाँचे मे ढाला जा सकता है, स्थूल भोग से सूक्ष्म त्याग ओर ले जाया जा सकता है ।

बहुरूपिये तरगाला ने साधुवेष मे रहकर मागलिक सुनाया तो उससे ऊदा मेहता का उद्धार हो गया । स्वयं तरगाला पर भी सुप्रभाव हुआ साधुवेष का और उसने सम्पत्ति का लोभ छोड दिया । साधु की सगति से नयसार का जीवन परिवर्तित हुआ और उत्तरोत्तर उत्कर्ष पर पहुँचकर वह तीर्थंकर बना । विजय हीरसूरीश्वर के समागम से अकबर अहिसाप्रेमी बना और आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने महाराजा कुमारपाल को परम आर्हत बना दिया ।

एक कहावत है :- "जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन !"

सामिषभोजी की अपेक्षा निरामिष- भोजी के विचार अच्छे होते है । पेट मे यदि अपवित्र आहार पहुँचेगा तो आचार-विचार भी अपवित्र हो जायेंगे ।

गोचरी के बाद एक साधु को तत्काल नींद आ गई तो गुरु को आशका हुई । जिस सेठ के घर से वह साधु आहार लाया था, उससे पूछने पर पता चला कि वह निर्माल्य आहार था । मन्दिर से लाया हुआ सस्ता माल उसने साधु को दान कर दिया था । उतरा हुआ भोजन ग्रहण करने से मनोवृत्ति भी उतर जाती है । रोटी के टुकडे के लिए कुत्ता अपनी पूँछ हिलाता है; परन्तु हाथी गौरव के साथ मन-भर लड्डु खा जाता है । मन्दिर मे अर्पित द्रव्य का उपयोग करने से सघ की उन्नति नही, अवनति होती है । पुरुषार्थ से अर्जित द्रव्य के उपयोग से ही सघ की उन्नति हो सकती है ।

पुरुषार्थ या श्रम के अभाव से आज घरो मे क्या हालत हो रही है ? पहले पत्नी प्रेमपूर्वक अपने हाथो से रसोई बनाकर पतिदेव को परोसती थी; किन्तु आज रसइया थाली मे रोटी फेंक कर खिलाता है । रसोइये मे प्रेम नही होता । उसकी दृष्टि वेतनपर होती है; भोजन की शुद्धि पर वह उतना ध्यान नही दे सकता जितना गृहिणी दे सकती है ।

अशुद्ध आहार से स्वास्थ्य भी गडबडा जाता है -

"केशत· स्वरभङ्गस्यात्
मेधा हन्ति पिपीलिका ।।"

(भोजन में केश चला जाय तो स्वरभग हो जाता है- गला बेसुरा हो जाता हे और चींटी चली जाय तो वह बुद्धि का नाश कर देती है)

मक्खी से उल्टी हो जाती है, मकडी खाने मे आ जाने से कोढ हो जाता हे तथा अन्य अनेक जन्तुओ से खाज-खुजली, फोडे-फुसी हो जाते हे । रोगो का प्रभाव मन पर भी होता है । इस प्रकार अशुद्ध आहार से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का नाश हो जाता है ।

पूणिया श्रावक का मन एक दिन सामायिक मे नहीं रमा तो उसने पत्नीसे पूछा कि आज आहार मे कोई चीज बाहर से आई थी क्या ? बहुत सोचने के बाद पत्नी को याद आई । बोली - "हाँ चूल्हे मे आग जलाने के लिए एक जलता हुआ कडा पडौसन से लाई थी ।"

बिना श्रम के प्राप्त कडे जैसी साधारण वस्तु का सूक्ष्म प्रभाव मन पर कैसे होता है ? इसका यह उत्कृष्ट उदाहरण है ।

बत्तीस दाँतों और दो होठो की सुरक्षा मे रहने वाली जीभ से एक कवि ने क्या अच्छा कहा है -

"रे जिह्वे ! कुरु मर्यादाम्
भोजने वचने तथा ।
वचने प्राण - सन्देहो
भोजने चाप्यजीर्णता ।।"

(हे जीभ ! तू भोजन और वचन मे मर्यादा का ध्यान रख; अन्यथा भोजन से अजीर्ण हो जायगा और बचन से प्राण सकट मे पड जायेंगे)

जीभ के दो काम है- खाना और बोलना। दोनों मे सयम जरूरी है। उसे सयम सिखाने के लिए उपवास का विधान है, जिसे 'अनशन' नामक बाह्य तप कहते है । उपवास का एक अर्थ है - (उप= समीप, वास=निवास) आत्मा के समीप रहना । भौतिक पदार्थों के समीप बहुत रह लिये । कभी-कभी आत्मा के सान्निध्य मे भी रह कर देखिये कि उसमे कैसा आनन्द आता है। आत्मा की सगति मे रहने की प्रेरणा सत्सग से मिलती हे ।

डिब्बे मे कोई सोता रहे या जागता रहे, ट्रेन चलती ही रहती है, उसी प्रकार दुनियाँ भी चलती ही रहती सम् उपसर्ग पूर्वक सृ (सरकता) धातु से ससार बना है । वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता - किसी की पर्वाह नहीं करता - निरन्तर गतिशील रहता है । कहावत है -

Time and tide waits for none.

(समय और ज्वार-भाटा किसी की प्रतीक्षा नहीं करता)

हमे भी ससार की तरह निरन्तर गतिशील रहना हे । हमारी गति मोक्ष की ओर होनी चाहिये ।

प्रसाधन सामग्री के विज्ञापन अखबारो मे खूब आते है; परन्तु असली सोना बिना विज्ञापन के बिक जाता है । महँगी वस्तुओ की अपेक्षा सस्ती वस्तुओ का ही विज्ञापन अधिक होता है; इसलिए आप प्रचार के चक्कर मे मत आइये । आत्मा का विज्ञापन अखबारो मे नही मिलने वाला है । उसके लिए शीतल साधु-सगति की शरण मे जाना होगा -

चन्दन शीतल लोके
चन्दनादपि चन्द्रमाः ।
ताभ्या चन्दनचन्द्राभ्याम्
शीतला साधुसगतिः ॥

(ससार मे चन्दन शीतल होता है । चन्दन से अधिक चन्द्र शीतल होता है; किन्तु चन्दन और चन्द्र दोनो से अधिक शीतल होती है - साधुसगति)

जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, क्रोध, अभिमान, माया (छल), लोभ, मोह, निन्दा, पैशुन्य, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, अभाव, सयोग, वियोग, आदि से सन्त्रास्त मनुष्यो को सत्सग से ही सन्तोष और शान्ति का अनुभव हो सकता है - यह ध्रुव सत्य है ।

निर्भय बनें

जो पेढी केवल नौकरों के द्वारा चलाई जाती है, वह बर्बाद हो जाती है; किन्तु किसी एक मालिक की सत्ता में चलाई जाय तो आबाद हो जाती है । इन्द्रियो पर भी यदि विवेकशील मन की सत्ता रहे तो सारा कार्य व्यवस्थित चल सकता है ।

रंगीन आइस्क्रीम आँख, नाक और जीभ को आकर्षित भले ही करती रहे; परन्तु गले के टांसिल्स से डरने वाला मन उसे स्वीकार करने से इन्कार कर देता है ।

इन्द्रियो को अपनी ओर करने वाली हजारों वस्तुएँ दुनिया मे भारी पड़ी है । उन्हे पाने के लिए मनुष्य कठोर परिश्रम करता है । जो वस्तु प्राप्त हो जाती हे, उसका सुख समाप्त हो जाता है । फिर कोई नई वस्तु पाने का प्रयास किया जाता है । यह चक्र चलता ही रहता हे और जीव इस चक्र मे फँसा रहता हे ।

भक्ति ओर ज्ञान से विशुद्ध मन उस चक्र से जीव को बाहर निकाल सकता हे । वह इन्द्रियों को विषयो की ओर जाने से रोक सकता है ।

सुकवि पडित श्री सूरजचन्द्रजी सत्य प्रेमी ने अपनी एक भाव-पूर्ण कविता में लिखा है -

इन्द्रियों के न घोड़े विषय मे अड़े
जो अड़े भी तो सयम के कोडे पडे ॥
तन के रथ को सुपथ पर चलाते चले
सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चले ॥

मन को सिद्ध और अरिहन्त देव मे रमाने की जरूरत है ।

जवान स्त्री के शब को देखकर एक कामूक युवकने कामना की पूर्ति का विचार किया । एक चोर ने उसके शरीर पर पहिने हुए सोने- चाँदी के गहनों को लूटने का विचार किया । एक सियार ने उसका माँस खाने का विचार किया; परन्तु एक ज्ञानी भक्त ने शरीर की नश्वरता का विचार किया और उसका वैराग्य सुदृढ हो गया ।

लोग स्वाद के लिए खाते हैं, किन्तु ज्ञानी क्षुधावेदनीय रोग के उपशमन के लिए औषध के समान अनासक्त भावसे आहार ग्रहण करते हे । मोक्ष के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शरीर को टिकाये रखना जरूरी हे; किन्तु भय शरीर को सुखा देता है ।

उपाध्याय यशोविजयजी ने लिखा है :-

भय से मुक्त होना हो तो ईन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो"

लोकमान्य तिलक का कथन है :-

"भय और जय परस्पर विरोधी है
यदि जय पाना चाहते हो तो निर्भय बनो"

रोते हुए बच्चे को चुप रखने के लिए कल्पित "हौवे" का डर दिखाते है, जो अनुचित हे । इससे बच्चे डरपोक और कायर बन जाते है ।

शक्रस्तव मे "अभयदयाण" पद से जिनदेव की स्तुति की गई है । वे जीवों को अभयदान करते है, स्वय निर्भय रहते हे और दूसरों को निर्भय बनाते है ।

भय हमारे मन मे होता है, जगत् मे नही । जब तक अज्ञान है, तब हमारे मन मे होता है । अँधेरे मे सडक पर पडी रस्सी को कोई साँप समझ ले तो वह काँप उठेगा; किन्तु रस्सी का ज्ञान होने पर भय भी मिट जायगा ।

जिस के पास बहुत सम्पत्ति है-उच्च सत्ता है-अभिमान है, उसे चौकीदार रखने पडते है । अकिचन सदा निर्भय रहता है ।

जिसमे वीरता है, वह निर्भय ही रहेगा । जिस वनमे चण्डकौशिक रहता था, उसमे न जाने का अनुरोध महावीर स्वामी से किया जाता है; परन्तु निर्भयता पूर्वक वे वहाॅ जाते है और प्रचण्ड चण्ड कौशिक को शान्त बना देते है । 'अगारा रुई को भले ही जला दे, परन्तु पानी मे डाल दिया जाय तो वह स्वय ही बुझ जाता हे । इसलिए नीतिकार राजस्थानी कवि कहता है -

"आगलो जो आग होवे
थू होजे पाणी !"

(यदि सामने वाला व्यक्ति क्रुद्ध हो - आग हो तो तू शीतल जल की तरह शान्त बन जाना)

जो दूसरो को मारता है, उसे मार खानी पडती है; किन्तु दूसरो को तारता है, उसकी लोग सेवा करते है । पद सेवा के लिए होता, अभिमान के लिए नहीं । पद पर रहकर जो उपकार नही करता, उस के विषय मे एक सस्कृत कवि कहता है -

अधिकारपद प्राप्य
नोपकार करोति यः ।
अकारस्य ततो लोप
'क' कारो द्वित्वमाप्नुयात् ॥

(अधिकार पद पर रह कर जो उपकार नही करता, उसके 'अ' का लोप हो जाता है और 'क' का द्वित्व अर्थात् "अधिकार" का "धिक्कार" हो जाता है)

जो अधिकारी अपने उच्च पद के अनुकूल निर्धारित कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह धिक्कार का पात्र बनता है । अपने से उच्च अधिकारियों के सामने वह डरता रहता है । इससे विपरीत कर्तव्य का पालन निर्भय रहता है ।

निभयता के गुण ने एक साधारण माली को राष्ट्रपति पद तक पहुँचा दिया था । उस माली का नाम था-अब्राहम लिकन । एक अनार का रस निकालकर जब उसने अपने मालिक को पीने के लिए दिया तो एक घूंट लेते ही मालिक ने उसे डॉटा –

"अरे ! यह रस तो कडवा लग रहा है ? क्या तुम जानते नही ?

लिकन ने कहा – "बिल्कुल नही; क्योकि मै पेडोको सींचने का काम करता हूँ, फल चखने का नही !"

इस उत्तर से मालिक उसकी प्रामाणिकता पर प्रसन्न हुआ और उसे उच्च पद पर नियुक्त किया । इसी प्रकार क्रमश आगे बढता हुआ एक दिन वह राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गया ।

यदि अपराध हो जाय तो निर्भय व्यक्ति प्रायश्चित से पीछे नही हटता। द्रढप्रहारी ने चार व्यक्तियो की हत्या कर दी थी; किन्तु प्रायश्चित्त करने के लिए साधु बनकर वह उसी गाँव मे पहुँचा । लोगों ने उस पर पत्थर बरसाये, गालियाँ बरसाई, थूका, हर तरह से उसे अपमानित किया; परन्तु वह न डरा , न भागा ! "मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है" ऐसा सोचकर उसने सारे उपसर्ग सह लिये । फलस्वरूप वहीं खडे खडे उसे केवलज्ञान प्राप्त हो गया !

इससे विपरीत लक्ष्मणा साध्वी ने लोक निदा के भय से मायापूर्वक प्रायश्चित किया । इससे पाप का जहर नहीं उतरा और उसे अनेक भवों मे भटकना पड रहा है ।

प्रायश्चित वह पवित्र झरना है, जिसमे स्नान करने से आत्मा के सारे दाग धुल जाते है ।

"दास कबीर जतन से ओढी,
ज्यो की त्यों धर दीनी चदरिया"।

आत्मा ही वह चादर हे, जिसे महात्मा कबीर सावधानी से ओढते हे और उस पर कर्मो का दाग नहीं लगने देते

आठ कर्मों मे से एक है-मोहनीय । इसके दो भेद हे- दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय । पहले के तीन प्रकार है- मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय । दूसरे के दो भेद है-कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय ।

क्रोध, मान, माया, लोभ मे से प्रत्येक के अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन-ये चार- चार भेद होने से कषाय-चारित्रमोहनीय के कुल सोलह भेद हो जाते है ।

नोकषाय के नौ प्रकार है-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद ।

इस प्रकार चारित्र मोहनीयकर्म के कुल पच्चीस भेदो मे से एक "भय' है ।

जब तक इस कर्म का उदय रहेगा, तब तक जीव डरता रहेगा । स्वय डरने और दूसरो को डराने से इस भय नामक नोकषाय चारित्र मोहनीय कर्म का बन्ध होता है ।

जिसमे साहस होता है, वीरता होती हे, वह न तो डरता है और न किसी को कभी डराने का ही प्रयास करता है

हम वीर के ही नही, महावीर के उपासक है, जो प्राणीमात्र को अभय देने वाले है । किसी भी सकट का हमे साहस के साथ मुकाबला करने को सदा तैयार रहना चाहिये ।

धीरज, शान्ति और साहस को स्थायी रूप से मन मे बसा कर हम भय को भगा सकते है ।

आइये, ऐसा ही करे-अपनी मानसिक कमजोरी को मिटाकर हम भी प्रभु महावीर के समान निर्भय बने ।

शिक्षार्थी

बचपन मे जो सस्कार पड़ जाते है, वे जीवन-भर टिकते है। सुलसा पर ऐसे धार्मिक सस्कार पड़ गये थे कि अंबड़ को उसके सामने झुकना पड़ा।

प्रभु महावीर ने अबड के साथ सती सुलसा को धर्मलाभ का सदेश कहलाया था। उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अन्त मे स्वय महावीर का नकली रुप धारण करके उससे सुलसा को अपनी ओर आकर्षित करने का भरपूर प्रयास किया; किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। फिर असली रुप मे सुलसा के सामने जाकर प्रभु का सन्देश सुनाया। अबड श्रावक इस दृढता से प्रभावित हुआ और उसका भी उद्धार हो गया।

सम्यग्ज्ञान भीतर से आता है, बाहर से नहीं। हीरे को घिसा जाय तो उसकी चमक बढती है; किन्तु यह चमक बाहर से नहीं; भीतर से आती है। ईंट के भीतर चमक नहीं होती; इसलिए घिसने पर उससे मिट्टी झरती है-वह टूटकर बिखर जाती है, परंतु चमक नहीं हो सकती। भरत महाराजा चक्रवर्ती सम्राट थे, वैभवशाली थे; फिर भी दर्पण-भवन मे अपने शरीर के स्वरूप पर विचार करते-करते उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। भीतरी सस्कार समय पर सयोग पाकर बाहर आ गये।

चलती ट्रेन मे बैठे एक व्यक्ति ने जब ट्रेन के रुकने पर यह सुना कि टर्मिनल (अन्तिम स्टेशन) आ गया है, गाड़ी खाली करो तो वह विरक्त हो गया। सोचा कि आयुरूपी ट्रेन का भी इसी प्रकार टर्मिनल आने वाला है।

विवाह के समय समर्थ स्वामी रामदास ने मडप मे "सावधान" शब्द सुना और वे तत्काल सावधान हो कर बिना विवाहित हुए ही वहाँ से भाग गये और सन्यासी बन कर जनकल्याण का उपदेश देने लगे।

सुनी हुई बात पर चिन्तन करने से वैराग्य किस प्रकार उत्पन्न होता है- इस बात के ये दो उदाहरण है। वैराग्य आत्माको परमात्मा मे रूपातरित कर सकता है।

जो इस लोक मे सुख चाहते है, वे क्रूर है। जो परलोक मे सुख चाहते है, वे मजदूर है और जो लोक-परलोक की पर्वाह न करके परमात्मा बनना चाहते है; वे शूर है। जैन धर्म शास्त्र इसी बात की शिक्षा देते है कि व्यक्ति को शूर बनना चाहिये।

यदि अपकारी पर क्रोध करना शूरता है तो क्रोध ही सबसे बडा अपकारी है :-

"अपकारिषु कोपश्चेत्
कोपे कोपः कथ न ते ?"

(यदि तू अपकारियो पर क्रोध करता है तो क्रोध पर क्रोध क्यो नही करता ?) शूरता सस्कारो का परिणाम है । सस्कार आते है- सुयोग्य शिक्षण से ।

•आज के शिक्षण से चरित्र गायब हो गया है, विनय का नाश हो गया है और विवेक का विलय हो गया है । यही कारण है कि आज विवेकान्द, वीरचन्द गाँधी आदि के समान प्रतिभाशाली व्यक्ति दिखाई नहीं देते, जिन्होने विदेशों मे जाकर भारतीय सस्कृति की धाक जमाई थी ।

लॉर्ड कर्जन ने बगालयूनिवर्सिटी के उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी से, जब विशिष्ट शिक्षा पाने के लिए केम्ब्रिज जाने का आदेश दिया तो, उत्तर पाया कि इस आदेश का पालन मेरी माँ की इच्छा पर निर्भर है ।

माँ के इन्कार करने पर दूसरे दिन अपना त्यागपत्र सामने रखकर लार्ड कर्जन से कहा :- "मेरी माँ का आदेश न होनेसे मै विदेश नही जा सकूँगा । यदि न जाने से आप रुष्ट हो तो मेरे त्याग पत्र को स्वीकृत कर ले ।"

यह सुनते ही मुखर्जी को छाती से लगा कर कर्जन बोले :- "आज मुझे दर्शन हुए हैं - भारतीय सस्कृति की जीवित प्रतिमा के ! धन्य है आप !"

ऐसे मातृभक्त मुखर्जी आज के शिक्षण से उत्पन्न नहीं हो पा रहे है । यह केवल भारत की नहीं, पूरे विश्वकी समस्या है । स्कूल-कॉलेज, सिनेमा टॉकीज और होटल के अतिरिक्त और कोई स्थान आज का छात्र नहीं जानता। धर्म उसके लिए एलर्जिक है- रोग है । उसकी स्थिति दयनीय है । "ज्ञानस्य फल विरतिः"(ज्ञान का फल पाप का त्याग, पापो से अटकना है)

इस बात को वह भूल गया है । उसमे हेमचन्द्रचार्यजी अथवा शकराचार्य बनने की आशा नहीं की जा सकती !

एक शालानिरीक्षक जो आठवीं कक्षा का निरीक्षण करके नौवीं मे पहुँचे । जिसने आठवीं मे सन्तोषजनक उत्तर दिया था, उसी छात्र को नौवीं मे देखकर निरीक्षक ने पूछा :- "तुम यहाँ कैसे ?"

छात्र ने कहा :- "मेरा मित्र आज यहाँ अनुपस्थित है । मे उसके बदले आ गया हूँ ।"

इस से क्रुद्ध होकर निरीक्षक ने प्रधानाध्यापक से शिकायत की। प्रधानध्यापक ने कक्षा शिक्षक को डाँटा तो वह बोला- "सर, असली कक्षा शिक्षक मैच देखने गये है । मै उनका डुप्लीकेट हूँ !"

इस पर काँपते हुए कक्षाध्यापक ने निरीक्षक के पाँव पकड लिये और कहा :- "मुझे बचाइए; अन्यथा मेरे बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे !"

निरीक्षक ने हँसते हुए कहा :- "डरने की कोई बात नहीं । मै स्वय भी डुप्लीकेट निरीक्षक हूँ !"

इस प्रकार जहाँ सर्वत्र डुप्लीकेशन चल रहा हो, वहाँ सच्ची शिक्षा कैसे मिल सकती है ?

शिक्षा के बाधक तत्त्व पाँच है :-

अह पचहि ठाणे हि, जोहि सिक्खा न लभई ।
थभा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सएण य ॥

(अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य - इन पाँच कारणों से शिक्षा प्राप्त नही होती)

पहला बाधक तत्त्व है - अभिमान । Pride has a fall (अभिमान का पतन होता है) हिन्दी मे कहावत है - "घमडी का सिर नीचा !"

"झुकता वही है जिसमे जान है अक्कडता मुडदे की पहचान है ।

अभिमानी अपने को गुरू से भी अधिक ज्ञानी समझता है । उसके प्रश्न जिज्ञासा की शान्ति के लिए नहीं, गुरु की परीक्षा के लिए होते है- गुरु को निरूत्तर करने के लिए होते है - उसे नीचा दिखाने के लिए होते हैं । ज्ञान के लिए विनय आवश्यक होता है । विनीत ही विद्या का कर सकता है । कोई भी गुरु अविनीत शिष्य से प्रसन्न नहीं रह और प्रसन्नता के बिना वह विद्या वितरित नहीं कर सकता ।

शिक्षा के लिए दूसरा बाधक होता है- क्रोध । स्वामी सत्यभक्त ने लिखा है :-

क्रोध बडा भारी नशा,
पागलपन है क्रोध ।
क्रोधी पा सकता नहीं,
कर्तव्यों का बोध ॥

कर्तव्य का खयाल क्रोधी को नहीं रहता । अभिमान यदि उबलता जल है तो क्रोध उसकी भाप है । अभिमान से क्रोध अधिक बुरा है ।

अभिमान केवल अपने लिए घातक है; परन्तु क्रोध दूसरो के लिए भी घातक है । क्रोधी खुद जलता है और दूसरो को भी जलाता है । शिक्षा प्राप्त करने के लिए जिस बुद्धि की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, क्रोध उसी को नष्ट कर देता है ।

तीसरा बाधक तत्त्व है - प्रमाद । यह मानव को पगु बनाता है - श्रम से दूर रखता हे - स्फूर्ति रहित मुर्दा बना देता है । प्रमादी व्यक्ति आलस्य को आराम समझता है - उसी मे सुख का अनुभव करता हे । यह दोहा उसके लिए आदर्श होता है :-

अजगर करे न चाकरी
पछी करे न काम ।
दास मलूका कह गये
सबके दाता राम ।।

प्रमादी परमुखापेक्षी होता है - पराधीन होता है- उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है- उसके लिए प्रगति का द्वारा बन्द हो जाता है । प्रमाद ऐसा नशा है, जिसमे व्यक्ति स्वय अपना भान भूल जाता है, फिर शिक्षा को भला कैसे याद रखा सकता है ?

चौथा बाधक है - रोग । शीरीरिक हो या मानसिक दोनो प्रकार का रोग भयकर होता है । शिक्षा प्राप्त करने के लिए चित्त की एकाग्रता जरूरी है; किन्तु जब तक रोग मिट नहीं जाता, तब तक चित्त एकाग्र नहीं हो सकता । सारा ध्यान रोग खींच लेता है; इसलिए अध्ययन की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं हो सकता ।

शिक्षा के लिए अन्तिम (पाँचवाँ) बाधक होता है- आलस्य । इस से मनुष्य निकम्मा हो जाता है । आलसी कोई भी काम करना नही चाहता । अपना काम वह दूसरो पर डाल देता है; भले ही दूसरे लोग काम बिगाड दे । बिगडे काम से होने वाली हानि भी वह सह लेता हो परन्तु स्वय अपने हाथ से कुछ भी करना नहीं चाहता । आलस्य ऐसा शत्रु है, जो अपने शरीर के भीतर रहता है :- घघलस्य हि मनुष्याणा, शरीरस्थो महारिपुः । शिक्षार्थी इस महान् शत्रु का नाश करके ही सफलता पाता ।

धर्म और विज्ञान

अनात्मवादी विज्ञान से हमे कोई प्रयोजन नहीं, हमे तो आत्मवादी विज्ञान और धर्म का मिलन करना है । धर्म से रहित विज्ञान तो उस बन्दर जैसा है, जिसने सोये हुए राजा की गर्दन मे बैठी हुई मक्खी को उडाने के लिए तलवार का प्रहार करके राजा के सिर को धड से अलग कर दिया था !

भौतिक सामग्री जुटा कर सुविधा प्रदान करना एक बात है और सहारक सामग्री का निर्माण करके विनाश को निमन्त्रित करना दूसरी । नल के पाइप मे कचरा भरा हो तो जल का प्रवाह रुक जाता है, उसी प्रकार मन मे स्वार्थ भरा हो तो परमाणु बम जैसे घातक अस्त्रों का आविष्कार और निर्माण होने लगता है तथा उससे वास्तविक विकास रूक जाता है ।

जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए धन है, परन्तु लोगो मे आवश्यकता से अधिक धन एकत्र करने की मनोवृत्ति ने जन्म ले लिया है । प्रभु ने परिग्रह को पाप के समान त्याज्य माना था; किन्तु उनके अनुयायी अधिक से अधिक परिग्रह मे फॅसते जा रहे है ।

हर एक परिग्रही अपने से बड़े परिग्रही की ओर देखकर मन मे असन्तोष की आग भड़का लेता है और अपने से छोटे परिग्रही को देखकर अहकार के हाथी पर सवार हो जाता है । दोनो ही स्थितियो मे अमृतमय जीवन विषमय बन जाता है ।

अपने शरीर को मनुष्य सजाता है, परन्तु चमडी के भीतर क्या है ? बात का विचार नहीं करता :-

रुदिरत्रिधातुमज्जा-
मेदोमासास्थिसहतिर्देहः ।
स बहिस्त्वचा पिनद्ध-
स्तस्मान्नो भक्ष्यते काकैः ॥

(रूधिर, त्रिधातु, मज्जा, मेद, मास और हड्डियों का सग्रह हे- शरीर ! वह बाहर चमडी से ढका हुआ है; इसीलिए उसे कौए नहीं खाते !)

किसी भी फेक्ट्री को देखिये । उसमे जिस रो मटेरियल का उपयोग होता है, वह बहुत खराब होता है, किन्तु प्रोडक्शन (उत्पादन) सुन्दर होता है; परन्तु दूसरी ओर शरीर है, जो शेठ आत्माराम एण्ड कपनी लिमिटेड

की फेक्ट्री है । उसमे जिस रॉ मटेरियल (भोजनसामग्री) की सप्लाइ की जाती है, वह बहुत सुन्दर सुगन्धित और स्वादिष्ट होती है, परन्तु उसका प्रोडक्शन ? उसका नाम लेना भी अच्छा नही लगता !

ऐसे शरीर के लिए पाप करना मूर्खता है । शरीर को स्वस्थ रखना तो कर्तव्य है; परन्तु उसके पोषण के लिए पापचरण करना अकर्तव्य है । शरीर से परोपकार कीजिये- साधुओं के दर्शन कीजिये- तीर्थयात्राएँ कीजिये- ध्यान कीजिये-तपस्याएँ कीजिये; परन्तु शरीर के लिए या द्वारा पाप मत कीजिये ।

कुछ लोग कहते है :- "महाराज ! पेट की समस्या बहुत बडी हे । उसके लिए पाप न करे तो क्या करे ?"

इसके उत्तर मे कहना है - "भाई ! ईमानदारी ही सबसे अच्छी नीति है औनेस्टी इज द बेस्ट पोलिसी, यदि आप ईमानदारी से श्रम करते रहे तो पेट से लेकर पेटी तक का समाधान हो सकता है । बेईमानी का भॉडा फूटने पर आपकी ईमानदारी पर भी लोग विश्वास नही करेगे । कहावत भी है :-

जैसे हॉडी काठ की,
चढै न दूजी बार !

एक बार बेईमानी की कलई खुल जाने पर आपका सारा धन्धा ही चौपट हो जायगा । इससे विपरीत ईमानदारी के साथ किया गया श्रम जीवनभर आपको कमाई देता रहेगा ।"

धर्मशास्त्र हमे ईमानदार रहने की प्रेरणा देते है । वे आत्मा के स्वरूप का परिचय देते है । आत्मा एक नित्य तत्त्व है । शरीर अनित्य है - नश्वर है । जैसी आत्मा हमारी है, वैसी ही दूसरो की है । हम यदि दूसरो की बेईमानी पसद नहीं करते तो दूसरे हमारी बेईमानी कैसे पसद करेगे?

धर्मशास्त्र हमे सयम भी सिखाते है । श्रीकृष्ण महाराज अपनी कन्याओं से कहते है :- "यदि अपने आपको महारानी बनाना चाहो तो प्रभुं नेमिनाथ के मार्ग पर चलो - सयम ग्रहण करो । इससे आत्मकल्याण तो होगा ही, समाज मे सम्मान भी खूब मिलेगा । इससे विपरीत यदि गुलामी करना चाहो-किसी की दासी बनना चाहो तो राजमहल मे ही रहो । तुम्हारा विवाह कर दिया जायगा ।"

सयम का पालन स्वर्ग पाने या सम्मान पाने के लिए नही; किन्तु मोक्ष पाने के लिए होता है । जैसे खेत मे अनाज के साथ घास-फूस अपने

आप पैदा हो जाती है, वैसे ही मोक्ष के लिए प्रयत्न करनेवालों को सम्मान या स्वर्ग अपने आप मिल जाता है; परन्तु घास-फूस की तरह ही सम्मान और स्वर्ग उन्हे फीके लगते है ।

अँधेरी रात मे बाहर जानेवाले हाथ मे टोर्च लेकर निकलते है अथवा टोर्च वाले के साथ जाते है और यदि यह भी सभव न हो तो जानकारों से रास्ते की जानकारी लेकर चलते है । ठीक उसी प्रकार कुशल व्यक्ति इस ससार मे सयमी बनकर या सयमियो के साथ भ्रमण करते हे अथवा उनसे जानकारी प्राप्त करके घूमते है ।

सयमियो का-साधुओं का या ज्ञानियो का सान्निध्य सभव न हो तो धर्मशास्त्रो का स्वाध्याय करके कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करत है :-

"तस्माच्छास्त्र प्रमाण ते
कार्याकार्य व्यवस्थितौ ।।"

(कार्य-अकार्य का निर्णय करने के लिए मुझे शास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिये)

मन की गुफा मे सिह की तरह कषाय छिपा रहता है, जो मौके-बेमौके प्रकट होकर जीवन को आशान्त बनाता रहता हे; इसीलिए ज्ञानियों ने मन को शुद्ध बनाने पर जोर दिया है । कहते है :-

"मन चगा तो कठौती मे गगा ।।"

किसी कवि ने बाँसुरी से पूछा कि तुझे इतना प्रेम श्रीकृष्ण क्यों करते हैं तो उसने उत्तर दिया :- "मै भीतर से पोली हूँ-स्वच्छ हूँ-सरल हूँ !"

मन भी आत्मारूपी कृष्ण की बाँसुरी है । उसमे निर्मलता हो- सरलता हो तो आत्मा के लिए वह प्रेमपात्र बन सकता है ।

विषय और कषाय ग्यारहवे गुणस्थानक तक पहुँची हुई आत्मा को भी परेशान करते है और असावधान होने पर उसे पहले गुणस्थानक मे पटक देते है ।

इसलिए निरन्तर जागरूक रहने की आवश्यकता है । कहने से करना अधिक अच्छा होता है । सदाचारी व्यक्ति के आदर्श जीवन से ही लोग प्रेरणा ग्रहण कर लेते है । प्रगति के लिए आचार की जरूरत है, प्रचार की नही ।

प्रगति के उच्च शिखर पर कोई उछल कर नही पहुँच सकता । उच्चतम आदर्श को सामने रखकर धीरे-धीरे उस ओर बढना पडता है :-

धीरे-धीरे रे मना !
धीरे सब कुछ होय ।
माली सीचे सौ घडा
रितु आये फल होय ।।

"हे प्रभो ! आपके ही समान मुझे पूर्ण वीतराग बनना है ।" ऐसी सुदृढ भावना को सम्बल बना कर साधक आगे बढता रहता है । कहा है :-

घघभावना भवनाशिनी ।।"

(भावना भव-भ्रमण को नष्ट करती है)

पूर्वभव मे शालिभद्र का जीव एक गरीब माता का पुत्र था । उसकी हठ पुरी करने के लिए इधर-उधर से माँग कर लाई गई सामग्री से माता ने पुत्र के लिए खीर बनाई । थाली मे खीर परोसकर माता पानी भरने चली गई । बालक मे भावना जगती है कि यदि कोई साधु आ जाय तो आहारदान करके खाऊ । सयोग से साधु का शुभागमन होता है । वह सपूर्ण खीर का दान सहर्ष कर देता है । फलस्वरूप अगले शालिभद्र के भव मे उसे अखूट सम्पदा प्राप्त होती है । त्याग की भावना बनी रहती है ।

सतत सघर्ष ही जीवन है -

Life of man is the field of battle—

(मानवजीवन एक रण क्षेत्र है)

युद्ध की तरह इसमे जीत-हार होती रहती है । सच्चा खिलाडी न जीत मे फूलता है और न हार मे रोता है । विवेकी व्यक्ति सुख और दुःख मे मानसिक सन्तुलन बनाये रखता है ।

प्रभु महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र की तेईसवे अध्ययन की इकतीसवी गाथा मे कहा है :-

"विन्नाणेण समागम्म
धम्मसाहणमिच्छिउ ।।"

(धर्म के साधनो का विज्ञान से समन्वय होना चाहिये)

धर्म के बिना विज्ञान शैतान बना देता है और विज्ञान के बिना धर्म हेवान । इन्सान बनने के लिए दोनों की आवश्यकता है ।

भोगों का त्याग

जीवन लेने के लिए नहीं, देने के लिए है- माँगने के लिए नहीं, अर्पण करने के लिए है - सग्रह के लिए नही, वितरण के लिए हे। किसी विचारक ने लिखा है :-

"मत लो भले ही स्वर्ग मिलता हो; किन्तु दे दो भले ही स्वर्ग देना पडे !"

सच्चा आनन्द त्याग में है, भोग मे नही; सन्तोष मे है, तृष्णा मे नहीं। कहा है :-

जो दस बीस पचास भये सत
होइ हजार तु लाख बनेगी
कोटि अरब्ब खरब्ब अनन्त
धरापति होने की चाह जगेगी ।
स्वर्ग-पताल का राज करूँ
तृषना मन मे अति ही उमडेगी
"सुन्दर" एक सन्तोष बिना शठ !
तेरी तो भूख कभी न मिटेगी ।।

मृत्यु का बुलावा आने पर सारी सपत्ति जब यही छोडकर जाना है, तब लोभ क्यो किया जाय ?

आपके घर पुण्य से प्राप्त परिवार होगा, पहरेदार भी होगा; परन्तु मौत आकर जब आपके घर का द्वार खटखटायेगी, तब न कोई परिवार का सदस्य ही आपको बचा सकेगा और न पहरेदार ही ! उस समय न प्रथम का चिकित्सक आपकी रक्षा कर सकेगा और न कोई बेरिस्टर कोर्ट से स्टे औरडर (स्थगन-अदेश) ही ला सकेगा !

"सयोगा विप्रयोगान्ताः
मरणान्त हि जीवितम् ।।"

(सब सयोगो का अन्त वियोग से होता है और जीवन का अन्त मृत्यु से)

जब अन्त मे सब का त्याग करना ही पडेगा, तब पहले से उनका त्याग क्यो न किया जाय ? यही सोचकर साधु-सन्त अनगार बन जाते है ।

विषय-कषाय के त्याग से आत्मा मे प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न होती है। कोमल अगोवाली महासती सीता ने महान् शक्ति शाली रावण का मुकाबला कैसे किया था ? राख की ढेरियो के समान हजारो नारियो से एक तिनके की तरह सुशीला स्त्री अधिक श्रेष्ठ है।

जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए चौकन्ना रहना होगा। हम जानते है कि एक छोटा-सा छेद नाव को डुबो देता है एक छोटी सी चिनगारी पूरे गोडाउन को ही नहीं गॉव को जला देती है। इसी प्रकार एक छोटी सी भूल मानव को विराट से वामन बना सकती हे।

छोटा सा दाग भी सुन्दर पोशाक की शोभा को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार छोटा-सा दोष भी हमारी प्रतिष्ठा की मिट्टी मे मिला सकता है। आचरण की शुद्धि ही जीवन की शोभा है- सभ्यता हे भडकीली पोशाक नहीं।

स्वामी विवेकानन्द की पोशाक देखकर हॅसने वाली एक अमेरिकन महिला से उन्होने कहा था :- "बहिन ! मे जिस देश (भारत) का निवासी हूँ, उस मे सभ्यता का निर्माता चरित्र होता है, दर्जी नहीं।"

ऐसा सभ्य चरिसम्पन्न विनीत व्यक्ति जहॉ भी जाता है, वहॉ सन्मान पाता है। सद्गुणो से ही हमारी आत्मा सुसस्कृत होती है। यदि हम देवलोक के स्वरूप पर विचार करे तो हमे त्याग का महत्त्व समझमे आ सकता है।

पहले बारह देवलोक है। फिर नौ ग्रैवेयक और पॉच अनुत्तर विमान। सबसे ऊपर है - सिद्धशिला।

पहले और दूसरे देवलोक के देव देवियो के साथ पॉचो इन्द्रियो के विषयसुख का भोग करते है। तीसरे और चौथे देवलोक के देव स्पर्शमात्र से भोगसुख का अनुभव करते है। पॉचवे और छठे स्वर्ग के देव देवियों के रूप को देखकर ही सन्तुष्ट हो जाते है। सातवे और आठवे स्वर्ग के देव देवियों के सगीत को सुनकर ही सम्पूर्ण भोगसुख पा जाते है। नौवे, दसवे ग्यारहवे और बारहवे स्वर्गो के देव देवियो के शरीर का केवल स्मरण करके ही रोमाचित हो जाते है।

बारहवे स्वर्ग से ऊपर के देवों की कामना शान्त हो जाती है। ग्रैवेयक देव ज्ञानियों की सूक्तियोंपर मनन करते है और अनुत्तर विमान वासी ज्ञानियों के वचनों पर अनुराग रखते है और यह अनुराग ही उनकी मुक्ति मे बाधक होता है।

इस वर्णन से सिद्ध होता है कि ज्यो-ज्यो कामभोग की लालसा शान्त होती जाती है और ज्ञानियों के उपदेश पर श्रद्धा पैदा होती जाती हे, त्यों

त्यो अधिक से अधिक सुख प्राप्त होता जाता है । वचनों का अनुराग छूटता है - मनुष्यभव में; इसलिए इस भव मे उत्पन्न जीव ही मोक्ष का अधिकारी बन सकता है और शाश्वतसुख पा सकता है ।

भोग मे अशान्ति है, त्याग मे शान्ति । प्रतिमा की पूजा मे भी त्याग की प्रधानता होती है । पूजा के आठ प्रकार क्रमशः ये है :- (१) जलपूजा, (२) चन्दन पूजा, (३) पुष्पपूजा, (४) धूपपूजा, (५) दीपकपूजा, (६) अक्षतपूजा, (७) नैवेद्य पूजा और (८) फलपूजा ।

पहली पूजा के समय पूजक सोचता है कि जल जिस प्रकार प्रतिमा के मल को धोता है, उसी प्रकार मेरी आत्मा पर जो कर्ममल लगा है, उसे मुझे धोकर साफ करना है ।

दूसरी पूजा के समय सोचता है कि जिस प्रकार चन्दन स्वय घिसकर अपनी शीतलता और सुगन्ध से दूसरो को सुख देता है, उसी प्रकार मुझे भी स्वय सकट सहकर दूसरो को सुख पहुँचाना है ।

तीसरी पूजा के समय सोचता है - फूल के समान मेरा जीवन भी क्षणिक है उसे सुन्दर सुकोमल और सुवासित बनाना है, कॉटों की तरह तीक्ष्ण और असह्य नही ।

चौथी पूजा के समय सोचता है कि जिस प्रकार धूप का धुआँ उर्ध्वगामी होता है, वैसे ही मुझे भी ऊर्ध्वगामी बनना है क्रमशः उन्नति के शिखर पर चढना है ।

पॉचवी पूजा के समय सोचता है कि दीपक से जिस प्रकार अन्धकार हट जाता है, उसी प्रकार प्रभु के श्रुतज्ञान से (आगम के रूप मे विद्यमान उपदेश से) मेरे अज्ञान को मुझे हटाना है ।

छट्ठी पूजा के समय सोचता है कि जिस प्रकार अक्षत उज्ज्वल है, उसी प्रकार मुझे भी अपनी आत्माको, जो अखण्ड है, पूर्ण उज्ज्वल बनाना है ।

सातवीं पूजा के समय सोचता है कि नैवेद्य की तरह विविध आहार करके चार गतियो मे बहुत-बहुत भटक चुका हूँ, अब मुझे प्रभु के समान अनाहारी सिद्धपद प्राप्त करना है ।

अन्तिम पूजा के समय सोचता है कि फल बीज का सर्वोत्तम विकास है, वैसे ही मोक्ष जीवन का सर्वोत्तम विकास है, पूरे वृक्षमे फल से अधिक मधुर कोई वस्तु नही होती, उसी प्रकार जीव मे मोक्ष से अधिक मधुर कुछ भी नहीं है । प्रभु ने वह मोक्ष सुख प्राप्त किया है; मुझे भी प्राप्त करना है ।

प्रभु की प्रतिमा को हम ऐसी वस्तुएँ अर्पित करते है, जो हमे जीवन मे बहुत प्रिय लगती है । इस प्रकार त्याग का अभ्यास करते है । कहा है :-

"त्यागाच्छान्तिनिरन्तरम् ।।"

(त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है ।)

जैन धर्म मे त्यागियो का ही सम्मान किया जाता हे । अरिहन्त और सिद्ध- ये दो देव है । आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन गुरु है । ये पाँचो पद त्यागियो के पद है । नमस्कार महामन्त्र मे इन्हीं पाँचो पदो को वन्दन किया जाता है ।

सुदेव और सुगुरु के बाद सुधर्म का विश्लेषण करके उसे चार भागो मे विभक्त किया गया है - दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ।

भोगविलास मे रुचि तो ससार के सभी जीवों मे होती है, परन्तु जिन भव्य जीवो की रूचि तत्त्वज्ञान मे होती है, वे ही आत्मकल्याण कर पाते है । धर्मशास्त्रो के प्रति यह रूचि (श्रद्धा) ही दर्शन हे ।

श्रद्धा को विवेक की आँख चाहिये । विवेक से श्रद्धा शुद्ध होती हे । विवेकशून्य श्रद्धा अन्धश्रद्धा बन जाती हे । धर्मशास्त्रो के प्रति श्रद्धा ही पर्याप्त नहीं हे । उनका अध्ययन भी आवश्यक हे । शास्त्रो के अध्ययन से - प्रवचनो के श्रवण से- ज्ञानियो के साथ बैठकर चर्चा करने से विवेक की जो आँख खुलती हे, उसे ज्ञान कहते हे ।

श्रद्धापूर्वक शास्त्रो से प्राप्त ज्ञान का आचरण चारित्र है, जिसमे प्रवृत्ति रूप पाँच समितियो और निवृत्तिरूप तीन गुप्तियो का समावेश होता हे

चारित्र के पालन मे जो परीषह (भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि बाईस) और उपसर्ग (विविध उपद्रव) आते है, उन्हे समभाव और शान्ति से सहना तप है । वैसे शास्त्रो मे अनशनादि छह बाह्य और प्रायश्चित्तादि छह आभ्यन्तर कुल बारह प्रकार के तपो का वर्णन आता हे । तप से कर्मो की निर्जरा होती है - आत्मा हल्की होती जाती है ।

इस प्रकार दो सुदेव, तीन सुगुरु और चार सुधर्म के योग से नवपद बनते है । इन नव पदो की पूजा, आराधना और साधना से जीवन परम पद (मोक्ष) का अधिकारी बनता है । मोक्ष के महान् मधुर फल का वीज है- भोगो का त्याग !

दुर्लभ चतुरंग

तिमिर से तेज की ओर बढने का प्रयास करनेवाले जीव के लिए शास्त्रो मे चार पुरुषार्थो, चार सुखशय्याओं एवं चार दुर्लभ अगों का वर्णन आता हे । क्रमशः हम उनपर विचार करेगे ।

धर्म, अर्थ काम और मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ है । जैसा कि कहा हे : -

धर्मार्थकाममोक्षाणाम्
यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव
तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

[धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारो मे से एक भी पुरुषार्थ जिसके जीवन मे नहीं होता, उसका जन्म बकरी के गले मे लटकने वाले स्तनों की तरह निरर्थक होता है (बकरी के उन स्तनो से दूध नहीं निकलता)]

आज सारी दुनिया मे अर्थ और काम का ही बोलबाला है; धर्म और मोक्ष की और ध्यान देने की किसी को फुरसत ही नहीं मिलती; इसी लिए इतनी अधिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई है कि सभी राष्ट्रीय नेता उन से परेशान है ।

सब से पहला पुरुषार्थ धर्म है । अर्थ के उपार्जन मे भी धर्म (ईमानदारी, नैतिकता) की आवश्यकता होती है और अर्थ (धन) के उपयोग (परोपकार) मे भी । दान करने से पुण्य होता है और पुण्य से धन की प्राप्ति होती है । इस प्रकार धर्म और अर्थ आपस मे एक दूसरे पर निर्भर है । उनका घनिष्ट सम्बन्ध है । तीसरा पुरुषार्थ है - काम । गीता मे लिखा हे :-

धर्माविरुद्धो भूतेषु
कामोऽस्मि भरतर्षभ !

(हे अर्जुन ! मै प्राणियों मे धर्म के अविरुद्ध काम हूँ)

जो काम धर्म के विरुद्ध है, वह पाप है- व्यभिचार है - त्याज्य है। काम को धर्म की मर्यादा मे रहना चाहिये । शास्त्रो मे श्रावक-श्राविकाओं के लिए चौथा अणुव्रत इसी लिए बनाया गया है । श्रावक "स्वदारासन्तोष" का और श्राविकाएँ "स्वपति सन्तोष" का पालन करे तो उनका काम धर्म को मर्यादा मे रहेगा ।

विषय-कषाय के त्याग से आत्मा मे प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न होती है। कोमल अगोवाली महासती सीता ने महान् शक्ति शाली रावण का मुकाबला कैसे किया था ? राख की ढेरियो के समान हजारो नारियो से एक तिनके की तरह सुशीला स्त्री अधिक श्रेष्ठ है।

जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए चौकन्ना रहना होगा। हम जानते है कि एक छोटा-सा छेद नाव को डुबो देता है एक छोटी सी चिनगारी पूरे गोडाउन को ही नहीं गॉव को जला देती है। इसी प्रकार एक छोटी सी भूल मानव को विराट से वामन बना सकती है।

छोटा सा दाग भी सुन्दर पोशाक की शोभा को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार छोटा-सा दोष भी हमारी प्रतिष्ठा की मिट्टी मे मिला सकता है। आचरण की शुद्धि ही जीवन की शोभा है- सभ्यता है भडकीली पोशाक नहीं।

स्वामी विवेकानन्द की पोशाक देखकर हॅसने वाली एक अमेरिकन महिला से उन्होने कहा था :- "बहिन ! मे जिस देश (भारत) का निवासी हूँ, उस मे सभ्यता का निर्माता चरित्र होता है, दर्जी नहीं।"

ऐसा सभ्य चरिसम्पन्न विनीत व्यक्ति जहॉ भी जाता है, वहॉ सन्मान पाता है। सद्गुणो से ही हमारी आत्मा सुसस्कृत होती है। यदि हम देवलोक के स्वरूप पर विचार करे तो हमे त्याग का महत्त्व समझमे आ सकता है।

पहले बारह देवलोक है। फिर नौ ग्रैवेयक और पॉच अनुत्तर विमान। सबसे ऊपर है - सिद्धशिला।

पहले और दूसरे देवलोक के देव देवियो के साथ पॉचो इन्द्रियो के विषयसुख का भोग करते है। तीसरे और चौथे देवलोक के देव स्पर्शमात्र से भोगसुख का अनुभव करते है। पॉचवे और छठे स्वर्ग के देव देवियो के रूप को देखकर ही सन्तुष्ट हो जाते है। सातवे और आठवे स्वर्ग के देव देवियो के सगीत को सुनकर ही सम्पूर्ण भोगसुख पा जाते हे। नौवें, दसवे ग्यारहवे और बारहवे स्वर्गो के देव देवियो के शरीर का केवल स्मरण करके ही रोमाचित हो जाते है।

बारहवे स्वर्ग से ऊपर के देवो की कामना शान्त हो जाती है। ग्रैवेयक देव ज्ञानियो की सूक्तियोपर मनन करते है और अनुत्तर विमान वासी ज्ञानियों के वचनो पर अनुराग रखते है और यह अनुराग ही उनकी मुक्ति मे बाधक होता है।

इस वर्णन से सिद्ध होता हे कि ज्यो-ज्यो कामभोग की लालसा शान्त होती जाती है और ज्ञानियो के उपदेश पर श्रद्धा पेदा होती जाती हे, त्यां

देखते है उनकी निर्भयता और सुखशान्ति से आकर्षित होते है, उनको प्राप्त होने वाले असाधारण सम्मान से प्रभावित होते हे, उनके लिए सयम दुर्लभ नही रह जाता। वे सयमी जीवन को अगीकार कर के सहर्ष आत्मकल्याण के मार्ग पर चल पडते है और दूसरो को भी उस पर चलने के लिए प्रेरित करते है।

एक बार महाराजा कुमारपाल ने आचार्य देवेन्द्रसूरि से कहा :- "आप मुझे स्वर्णसिद्धि का प्रयोग सिखा दे, जिससे मै प्रजाजनो मे स्वर्ण बॉट कर सब को सम्पन्न और सुखी बना सकूँ।"

सूरिजी बोले :- "यदि स्वर्ण से ही लोग सुखी हो सकते तो तीर्थंकर देव भी सब को स्वर्ण का ही दान करते, उपदेश का नही। तृष्णा ही दु:ख का कारण है। सुख का निवास सन्तोष मे हे - सयम मे है।"

कुमारपाल सयम का महत्त्व समझ गये। हमे भी समझ कर सयम की ओर बढना है।

त्यो अधिक से अधिक सुख प्राप्त होता जाता है । वचनो का अनुराग छूटता है – मनुष्यभव मे; इसलिए इस भव मे उत्पन्न जीव ही मोक्ष का अधिकारी बन सकता है और शाश्वतसुख पा सकता है ।

भोग मे अशान्ति है, त्याग मे शान्ति । प्रतिमा की पूजा मे भी त्याग की प्रधानता होती है । पूजा के आठ प्रकार क्रमशः ये है :- (१) जलपूजा, (२) चन्दन पूजा, (३) पुष्पपूजा, (४) धूपपूजा, (५) दीपकपूजा, (६) अक्षतपूजा, (७) नैवेद्य पूजा और (८) फलपूजा ।

पहली पूजा के समय पूजक सोचता है कि जल जिस प्रकार प्रतिमा के मल को धोता है, उसी प्रकार मेरी आत्मा पर जो कर्ममल लगा है, उसे मुझे धोकर साफ करना है ।

दूसरी पूजा के समय सोचता है कि जिस प्रकार चन्दन स्वय घिसकर अपनी शीतलता और सुगन्ध से दूसरो को सुख देता है, उसी प्रकार मुझे भी स्वय सकट सहकर दूसरो को सुख पहुँचाना है ।

तीसरी पूजा के समय सोचता है – फूल के समान मेरा जीवन भी क्षणिक है उसे सुन्दर सुकोमल और सुवासित बनाना है, काँटों की तरह तीक्ष्ण और असह्य नही ।

चौथी पूजा के समय सोचता है कि जिस प्रकार धूप का धुआँ उर्ध्वगामी होता है, वैसे ही मुझे भी ऊर्ध्वगामी बनना है क्रमशः उन्नति के शिखर पर चढना है ।

पाँचवी पूजा के समय सोचता है कि दीपक से जिस प्रकार अन्धकार हट जाता है, उसी प्रकार प्रभु के श्रुतज्ञान से (आगम के रूप मे विद्यमान उपदेश से) मेरे अज्ञान को मुझे हटाना है ।

छठ्ठी पूजा के समय सोचता है कि जिस प्रकार अक्षत उज्ज्वल है, उसी प्रकार मुझे भी अपनी आत्माको, जो अखण्ड है, पूर्ण उज्ज्वल बनाना है ।

सातवीं पूजा के समय सोचता है कि नैवेद्य की तरह विविध आहार करके चार गतियो मे बहुत-बहुत भटक चुका हूँ, अब मुझे प्रभु के समान अनाहारी सिद्धपद प्राप्त करना है ।

अन्तिम पूजा के समय सोचता है कि फल बीज का सर्वोत्तम विकास है, वैसे ही मोक्ष जीवन का सर्वोत्तम विकास है, पूरे वृक्षमे फल से अधिक मधुर कोई वस्तु नही होती, उसी प्रकार जीव मे मोक्ष से अधिक मधुर कुछ भी नहीं है । प्रभु ने वह मोक्ष सुख प्राप्त किया है; मुझे भी प्राप्त करना है ।

ज्ञान से मोक्ष

जो दिखाई देता है, उसे क्या देखें ? जो नही दिखाई देता, वही देखने योग्य हे; लेकिन उस अरूपी पदार्थ को ज्ञान चक्षु से ही देखा जा सकता हे, चर्मचक्षुओं से नहीं ।

कौन खोलेगा ज्ञानचक्षु ? सयमी साधु या ज्ञानी गुरु !

अज्ञानतिमिरान्धानाम्
ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन
तस्मै श्री गुरवे नम: ।।

(अज्ञान के अन्धकार से अन्धों की आँख को ज्ञानरूपी अजन शलाका से खोलने वाले गुरु को मै नमन करता हूँ ।)

जम्बूकुमार के ज्ञानचक्षु सुधर्मा स्वामी के उपदेश से खुल गये । वे अपनी नवोढाओ को सासारिक सम्बधों की असारता समझाते है और जिनेश्वर से सम्बन्ध जोडने की सलाह देते है, जो कभी नही टूटता, जिसमे वियोग की कोई सम्भावना नहीं है ।

चोरो का सरदार प्रभव चोरी करने आता है और इस उपदेश को जम्बूकुमार से सुनकर उसकी भी आँखे खुल जाती है ।

फलस्वरूप जम्बूकुमार ज़ब दीक्षा लेते है, तब पाँच सो चोर साथियों सहित प्रभव भी दीक्षित हो जाते है । गुरुदेव के सान्निध्य मे श्रुतज्ञान प्राप्त करके सयम् और तपस्या के बल पर प्रगति करते हुए वे आचार्य प्रभवस्वामी रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त करते है ।

गुरुदेव की कृपा से दृष्टि मे ऐसी ही निर्मलता आ जाती हे । कहावत है :-

"जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि !"

दुर्योधन से राजसभा मे पूछा गया कि अच्छे आदमी कौन-कौन हे तो बोला - "सिर्फ मै ही अच्छा हू विपरीत युधिष्ठिर से पूछा गया कि बूरं आदमी कौन-कौन है तो बोले :- "सिर्फ मै ही बुरा हु !"

चडकौशिक की दृष्टि मे विष था और महावीर प्रभु की दृष्टि मे क्षमा

प्रभु की प्रतिमा को हम ऐसी वस्तुएँ अर्पित करते हे, जो हमे जीवन मे बहुत प्रिय लगती है । इस प्रकार त्याग का अभ्यास करते है । कहा है :-

"त्यागाच्छान्तिनिरन्तरम् ॥"

(त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है ।)

जेन धर्म मे त्यागियो का ही सम्मान किया जाता है । अरिहन्त और सिद्ध- ये दो देव हे । आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन गुरु है । ये पाँचो पद त्यागियो के पद है । नमस्कार महामन्त्र मे इन्हीं पाँचो पदो को वन्दन किया जाता है ।

सुदेव और सुगुरु के बाद सुधर्म का विश्लेषण करके उसे चार भागो मे विभक्त किया गया है - दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ।

भोगविलास मे रुचि तो ससार के सभी जीवो मे होती है, परन्तु जिन भव्य जीवो की रूचि तत्त्वज्ञान मे होती हे, वे ही आत्मकल्याण कर पाते है । धर्मशास्त्रो के प्रति यह रूचि (श्रद्धा) ही दर्शन है ।

श्रद्धा को विवेक की आँख चाहिये । विवेक से श्रद्धा शुद्ध होती हे । विवेकशून्य श्रद्धा अन्धश्रद्धा बन जाती हे । धर्मशास्त्रो के प्रति श्रद्धा ही पर्याप्त नही हे । उनका अध्ययन भी आवश्यक हे । शास्त्रो के अध्ययन से - प्रवचनो के श्रवण से- ज्ञानियो के साथ बेठकर चर्चा करने से विवेक की जो आँख खुलती हे, उसे ज्ञान कहते हे ।

श्रद्धापूर्वक शास्त्रो से प्राप्त ज्ञान का आचरण चारित्र है, जिसमे प्रवृत्ति रूप पाँच समितियो और निवृत्तिरूप तीन गुप्तियो का समावेश होता हे

चारित्र के पालन मे जो परीषह (भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि बाईस) और उपसर्ग (विविध उपद्रव) आते है, उन्हे समभाव और शान्ति से सहना तप है । वैसे शास्त्रो मे अनशनादि छह बाह्य और प्रायश्चित्तादि छह आभ्यन्तर कुल बारह प्रकार के तपो का वर्णन आता हे । तप से कर्मो की निर्जरा होती है - आत्मा हल्की होती जाती है ।

इस प्रकार दो सुदेव, तीन सुगुरु और चार सुधर्म के योग से नवपद बनते है । इन नव पदो की पूजा, आराधना और साधना से जीवन परम पद (मोक्ष) का अधिकारी बनता है । मोक्ष के महान् मधुर फल का बीज है- भोगो का त्याग !

का अमृत । अमृत विष को शान्त कर देता है । महावीर के मुखारविन्द से उपदेश के मकरन्दबिन्दु झरते है । :-

सबूज्झह कि न बुज्झह
सबोही खलु पेच्च दुल्लहा !"

(हे चण्डकौशिक ! समझ, तू भला समझता क्यो नहीं ? मरने के बाद यह समझ तेरे लिए दुर्लभ होगी ।)

वह समझ जाता है- क्रोध का त्याग कर देता है - उसका आतक समाप्त हो जाता है । उसके प्रति लोगो का दृष्टिकोण भी बदल जाता है ।

प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र मे दृष्टि के दो प्रकार बताये है - अमागलिक और मागलिक ।

पहली दृष्टि से सुख मे भी दुःख दिखाई देता है और दूसरी से दुःख मे भी सुख । पीलिया के रोगी को जिस प्रकार सभी वस्तुएँ पीली नजर आती है, वैसे ही अमागलिक दृष्टि वाले को सर्वत्र प्रतिकूलताएँ ही दिखाई देती है ।

भौतिक सामग्री की प्रचुरता जिनके पास होती है, उनसे यदि हम अपनी तुलना करके ईर्ष्या की आग मे जलते रहे तो यह मजह एक मूर्खता होगी; क्योंकि जिसे हम सुखी समझते है वह भी अपनी वर्तमान सम्पत्ति से असन्तुष्ट है । वह भी अपने से बडे धनवान् की बराबरी करने के लिए दिनरात दौड धुप करता रहता है ।

महात्मा शेखसादी के जूते फट गये । बिना जूतो के उन्हे चलने-फिरने मे तकलीफ होने लगी । खुदा से जूतों की एक जोडी माँगने के लिए वे मस्जिद की ओर लपके । मस्जिद के द्वारा पर एक ऐसे आदमी को बैठे हुए उन्होंने देखा जिसकी दोनों टाँगे नहीं थीं तो वे उल्टे पाँव लौट आये और खुदा को इस बात के लिए शुक्रिया अदा करने लगे कि उनकी दोनों टाँगे तो कमसे कम सही-सलामत है । इस प्रकार उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन होते ही वे सुखी हो गये ।

कुत्तो ने भौंक-भौंक कर नींद हराम कर दी तो मकान मालिक सुबह उठ कर खूब बक-बक करता रहा; किन्तु पडोसियों के कहने से जब उसे पता चला कि कुत्तों के भौकने से चोर भाग गये थे, तब उसकी नाराजी खुशी मे बदल गई !

ऐसे सैकडो उदाहरण हमारे आसपास मिल सकते है, जब दृष्टिकोण बदल ने पर अनुभूति बदल जाती है; इसलिए अपनी दृष्टि को सदा अनुकूल बनाये रखना चाहिये जिससे अशान्ति मन मे प्रवेश न कर सके ।

दुर्लभ चतुरंग

तिमिर से तेज की ओर बढने का प्रयास करनेवाले जीव के लिए शास्त्रो मे चार पुरुषार्थो, चार सुखशय्याओं एवं चार दुर्लभ अगों का वर्णन आता हे । क्रमशः हम उनपर विचार करेगे ।

धर्म, अर्थ काम और मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ है । जेसा कि कहा हे : -

धर्मार्थकाममोक्षाणाम्
यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव
तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

[धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारो मे से एक भी पुरुषार्थ जिसके जीवन में नहीं होता, उसका जन्म बकरी के गले मे लटकने वाले स्तनो की तरह निरर्थक होता है (बकरी के उन स्तनो से दूध नहीं निकलता)]

आज सारी दुनिया मे अर्थ और काम का ही बोलबाला हे; धर्म और मोक्ष की और ध्यान देने की किसी को फुरसत ही नही मिलती; इसी लिए इतनी अधिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई है कि सभी राष्ट्रीय नेता उन से परेशान है ।

सब से पहला पुरुषार्थ धर्म है । अर्थ के उपार्जन मे भी धर्म (ईमानदारी, नेतिकता) की आवश्यकता होती है और अर्थ (धन) के उपयोग (परोपकार) मे भी । दान करने से पुण्य होता है और पुण्य से धन की प्राप्ति होती हे । इस प्रकार धर्म और अर्थ आपस मे एक दूसरे पर निर्भर है । उनका घनिष्ट सम्बन्ध है । तीसरा पुरुषार्थ है - काम । गीता मे लिखा हे :-

धर्माविरुद्धो भूतेषु
कामोऽस्मि भरतर्षभ !

(हे अर्जुन ! मै प्राणियो मे धर्म के अविरुद्ध काम हूँ)

जो काम धर्म के विरुद्ध है, वह पाप है- व्यभिचार है - त्याज्य हे। काम को धर्म की मर्यादा मे रहना चाहिये । शास्त्रो मे श्रावक-श्राविकाओं के लिए चौथा अणुव्रत इसी लिए बनाया गया है । श्रावक "स्वदारासन्तोष" का और श्राविकाएँ "स्वपति सन्तोष" का पालन करे तो उनका काम धर्म की मर्यादा मे रहेगा ।

मागलिक दृष्टि हमेशा दूसरो के गुण देखती है, जिसमे उन्हे अपनाया जा सके और अपने दोष देखती है, जिससे उन्हे सुधारा जा सके । इस प्रकार यह दृष्टि अधिक से अधिक सज्जनो की सृष्टि करती है ।

अमागलिक दृष्टि दूसरो को दुःखी देखकर खुश होती है: इसलिए दूसरों को सताने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करती है । उसे दुष्ट बनाकर ही दम लेती हे ।

जल मे डूबते किसी चूहे को एक हस ने बचा लिया । उस समय वह मारे ठण्ड के ठिठुर रहा था; इसलिए दया कर के उसे उसने अपने परवो के नीचे छिपा लिया, जिससे बाहर की ठडी हवा उसे न लगे ओर शरीर की गर्मी से उसे राहत मिले; किन्तु राहत पाकर चूहे ने हस के परवो को ही कुतर डाला ? फलस्वरूप हस उड नहीं सका । अमागलिक दृष्टिवाले दुष्ट अपने उपकारी पर भी उपकार करनेवाले ऐसे ही चूहे जेसे हांते हे ।

गुरु कृपा से प्राप्त मगलमय दृष्टि ही स्म्यग्दृष्टि है - सम्यक्त्व हे- सदि्वचारकता है- शुद्ध भावना है, जिसको प्राप्त किये बिना पूजा हो या प्रभुदर्शन, सामायिक हो या प्रतिक्रमण, भक्ति हो या भजन, तपस्या हो या प्रत्याख्यान- कोई भी धार्मिक क्रिया सफल नहीं हो सकती ! जेसा कि कल्याणमन्दिर स्तोत्र मे कहा है :-

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव ! दुःखपात्रम्
यस्मात् क्रिया: प्रतिफलन्ति न भावशून्या: ।।

(हे जनबन्धु प्रभो ! मैने आपके उपदेशो को खूब सुना है, आपकी खूब पूजा की है तथा आपके खूब दर्शन किये है : फिर भी निश्चयपूर्वक मैने आपको भक्ति-भाव से मन मे स्थापित नहीं किया; इसीलिए मे दुःखों का पात्र बना हुआ हूँ; क्योकि भावशून्य क्रियाएँ कभी सफल नहीं होतीं ।)

सद्गुरूओ के सान्निध्य से ज्ञानचक्षु खुलने पर अरूपी तत्त्व का साक्षात्कार होता है, जिसे आत्मा कहते है । यह एक नित्य तत्त्व है । शरीर बदल जाते है; परन्तु आत्मा नहीं बदलती । वह आनन्दमय होती हे । प्रसन्न रहना और दूसरो को प्रसन्न रखना उसका स्वभाव होता है ।

आत्मज्ञ सदा आशाओ को वश मे रखते है । वे आशाओं के वश मे नहीं रहते । वे जानते है :-

इस प्रकार जिसके जीवन मे धर्म ओतप्रोत हो जाता है, उस मे समस्त सद्गुणों का धीरे-धीरे निवास होने लगता है । सद्गुणों मे त्याग और सयम की परकाष्ठा होने पर- तपस्या से कर्मो का क्षय हो जाने पर अन्तिम ज्ञान और अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष का आनन्द मिलता है ।

वह आनन्द शाश्वत होता है, स्थिर होता है । दिन-भर परिश्रम करने के बाद ही विश्राम का आनन्द लेने के लिए मनुष्य सोता है । सोने के लिए शय्या का उपयोग करता है । शास्त्रकारो ने जीव के लिए चार सुखशय्याएँ बताई है । :- (१) श्रवण, (२) मनन, (३) माध्यस्थ्य और (४) आत्मचिन्तन ।

प्रभु की वाणी को गुरुमुख से सुनना 'श्रवण' है । श्रवण करनेवाला ही श्रावक कहलाता हे । सुनने वाला ही जान सकता है । महापुरुषो के अनुभव शास्त्रो के रूप मे मौजूद है । जो विशिष्ट विद्वान् है, वे तो शास्त्रो का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त कर लेगें; परन्तु अन्य सब लोग गुरु मुख से व्याख्यान सुनकर ज्ञान प्राप्त करते है ।

दूसरी शय्या है - मनन । पशु खाने के बाद जुगाली करते हे । इससे पाचन अच्छा होता है । इसी प्रकार श्रुतज्ञान पर मनन करना चाहिये । जो कुछ सुनने मे आया हो, उस पर विचार करना चाहिये । बिना विचार किये पढना या सुनना वैसा ही व्यर्थ हो जाता है जैसा बिना पचाये खाना। मनन करने से सुना हुआ ज्ञान पुष्ट होता है ।

तीसरी शय्या है - माध्यस्थ्य । इसका मतलब है दूसरों के दोषो पर उपेक्षा करना । लोगो को दूसरो की लडाई देखने मे दूसरों की निन्दा सुनने मे - दूसरो के दोषो की चर्चा करने मे रस आता हे; किन्तु धर्म प्रेमी यह सब प्रपच पसद नहीं करता । वह अपने दोषो पर ही ध्यान देता हे, दूसरो के दोषो पर नहीं ।

चौथी शय्या है - आत्मचिन्तन । इसका मतलब है अपने आपके विषय मे विचार करना । मै कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? क्यो आया हूँ ? मेरे जीवन का प्रयोजन क्या हे ? प्रयोजन को पा रहा हूँ या नहीं ? कौन सी कमजोरी उस उपाय के अवलम्बन मे बाधक है ? उस कमजोरी को दूर करने के लिए मै क्या कर रहा हूँ ? ऐसे प्रश्नों पर विचार करने से वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता हे, जो जीव को मोक्ष मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है ।

प्रभु महावीर स्वामी ने चार दुर्लभ तत्त्वों की चर्चा की है :-

चत्तारि परमगाणि
दुल्लहाणि य जतुणो ।।
मणुस्सत्त सुई सद्धा
सजमम्मि य वीरिय ।।

आशाया ये दासा -

स्ते दासा: सर्वलोकस्य ।
आशा दासी येषाम्
तेषा दासायते लोक: ।।

(जो आशा के दास होते है, वे सारे ससार के दास होते है; किन्तु आशा जिनकी दासी होती है, उनका दास ससार होता है)

आशा, इच्छा, तृष्णा और भोगवासना ही जीव को भवभव मे भटकाते है। यदि हम छाया को पकडने के लिए उसका पीछा करे, तो भागते-भागते थक जायॅगे, परन्तु वह पकड मे नही आयगी । यही हालत विषय सुखो के पीछे भागने वाले जीवो की होती है ।

यदि हम छाया का पीछा छोड कर सूर्य की ओर मुँह करके खडे हो जायॅ- सूर्य की और दौंडे तो छाया हमारे पीछे-पीछे भागती चली आयगी। इसी प्रकार जो लोग भोगवासना को पीठ दिखाकर मोक्षरूपी सूर्य की ओर दौड लगाते है, भोग-विलास उनका पीछा करते है । स्वामी विवेकानन्द से एक महिला ने कहा :- "मै चाहती हूॅ कि आपके ही समान एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दूॅ !"

इसका आशय स्पष्ट ही प्रणय निवेदन था, किन्तु अनासक्त भाव से सावधान होकर विवेकानन्द ने उत्तर दिया :- ! तुम मुझे ही अपना पुत्र मान लो ।"

ज्ञानी वासना के बन्धन मे नहीं नही फॅसते । वासना की पूर्ति से प्राप्त क्षणिक सुख के बदले वे मोक्ष का स्थायी सुख पाने का प्रयास करते है।

[प्राणियो के लिए दुर्लभ (बहुत कठिनाई से प्राप्त होने वाले) चार अग परम (श्रेष्ठ) हे- मनुष्यता, श्रुति, श्रद्धा और सयम का पालन ।]

चौरासी लाख जीवयोनियो मे भटकते हुए जीव को पुण्यों का विशाल पुज एकत्र होने पर मनुष्य शरीर मिलता है । मनुष्य ही मनन कर सकता हे और अपने कर्मो का क्षय करके मोक्ष पा सकता है । पशु अपना दुःख शब्दो से प्रकट नही कर सकता, मनुष्य कर सकता है; क्योंकि उसे एक समृद्ध और विकसित भाषा का ज्ञान होता है; इसलिए पशु से मनुष्य श्रेष्ठ हे । मनुष्य शरीर पाकर भी कई लोग दुष्ट बन जाते है - दुर्बलों को सताते हे - दूसरों की निन्दा करते हे । ऐसे मनुष्यों से तो पशु ही श्रेष्ठ होते हे, जो वेसे बुरे कार्य नहीं करते ।

शास्त्र की गाथा मे "माणुस्सत्त" शब्दका प्रयोग हे अर्थात् मनुष्यता को दुर्लभ वताया गया है । सहानुभूति स्नेह, अनुकम्पा, परोपकार आदि मानवता के अग हे । इन गुणो को आत्मसात् करनेवाला ही वास्तव मे मानव हे; अन्यथा वह दानव है । दानवता सुलभ है, मानवता दुर्लभ ।

दुसरा दुर्लभ अग है - श्रुति अर्थात् शास्त्रों का श्रवण करना । प्रभु के वचनामृत का पान करने से धार्मिक जीवन की पुष्टि होती है । प्रथम सुखशय्या के रूप मे इस पर विचार किया जा चुका हे ।

तीसरा दुर्लभ अग हे- श्रद्धा । मनुष्य-भव मे शास्त्रों के श्रवण का अवसर भी आ जाय, किन्तु यदि श्रद्धा पैदा न हो तो उसका लाभ नहीं मिल सकता । यदि सुनने के बाद कोई शका हो तो जिज्ञासा के रूप में रखकर ज्ञानी गुरूओ से उसका समाधान पा लेना चाहिये । कहा हे :-

> यस्याग्रे न गलति सशयः समूलो
> नैवासो क्वचिदपि पण्डितोक्तिमेति ॥

(जिसके सामने अपना सशय जडमूल से न उखड जाय, उसे कभी 'पडित' नहीं कहते !)

पडित मुनियो से शकाओं का निवारण कर लेने पर श्रद्धा उत्पन्न होती है । यह श्रद्धा ही हमारे जीवन मे परिवर्तन लाती है ।

चौथा दुर्लभ अग है - संयम का पालन । श्रद्धा हो जाने पर भी प्रसाद के वशीभूत प्राणी सयम से कतराता है । सयमी जीवन मे आनेवाले परीषहो और उपसर्गो की सभावना से वह घबराता है । परिवार का मोह उसे रोकता है; इसलिए प्रभु ने सयम को सब से अधिक दुर्लभ वताया हे ।

जो लोग सयमियो के सम्पर्क मे रहकर उन के जीवन को निकट से

कथा-खण्ड

अंजना

सुसराल और पीयर से अपमानित होकर अजना जगल मे चली जाती है और वहॉ पके हुए, पेडो के फलो तथा बहते हुए झरने के निर्मल जल का उपयोग करती हुई निर्भयता और शान्ति से अपने गर्भस्थ शिशु का पोषण करती है ।

पुण्योदय से एक दिन चार ज्ञान के धारक महामुनि विद्याचरण के दर्शन होते है ।

श्रद्धापूर्वक वन्दन करके ज्ञानी गुरुदेव से अजना पूछती है :- "भगवन् ! कृपा करके मुझे अपने पूर्वभव का वृत्तान्त बताईये, जिससे मै समझ सकू कि इस भव मे मेरा इतना अपमान क्यो हुआ ? क्यो मुझे इतना दु:ख उठाना पडा ?"

गुरुदेव बोले :- "बहन ! वृत्तान्त सुनाने से पहले मै तुम्हे एक खुशखबर सुना देना चाहता हूँ कि तुम्हारे उदर मे जो जीव पल रहा है, वह अत्यन्त पुण्यशाली है । पिछले पॉच भवो से वह धर्माराधना करता आ रहा है और यह उसका चरम शरीर है। इसी भव मे वह केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जानेवाला है ।"

यह सुनकर अजना को असीम सुख का अनुभव हुआ; फिर भी अपना पूर्वभव जानने की उत्सुकता उसमे बनी रही । मुनिवर ने उसकी उत्सुकता को शान्त करने के लिए पूर्वभव का वृतान्त सुनाना प्रारम्भ किया । बोले :- "एक राजा थे- कनकराय । दो रानियो के पति थे । एक रानी का नाम था- कनकोदरी और दूसरी का लक्ष्मीवती ।

"तस्यासीत् गेहिनी लक्ष्मी-
लक्ष्मीलक्ष्मीपतेरिव ।।"

उसकी रानी लक्ष्मी साक्षात् लक्ष्मीपति (विष्णु) की लक्ष्मी के समान सुन्दर थी । राजा उसकी सुन्दरता पर मुग्ध थे । यही कारण था कि वे लक्ष्मीवती को अधिक चाहने लगे थे । इससे कनकोदरी के मन मे ईर्ष्याग्नि भडक उठी । वह उसे परेशान करके सन्तोष का अनुभव करने लगी ।

लक्ष्मीवती प्रभु की एक प्रतिमा का प्रतिदिन भक्तिभाव से पूजन किया करती थी । कनकोदरी ने एक दिन उस प्रतिमा को घूरे के ढेर मे ले जाकर छिपा दिया । बाईस घटे तक उसके वियोग मे लक्ष्मीवती तडपती

पुण्यपाल महाराजा

महाराज पुण्यपाल आठ स्वप्न देख कर एक दिन प्रात: उठे । प्रारभिक क्रियाओ से निवृत्त होकर वे प्रभु महावीर के दर्शन, वन्दन और प्रवचन श्रवण के लिए पहूँचे । प्रवचन समाप्त होने के बाद उन्होने अपने सपने सुनाये । उन सपनो का आशय प्रकट करने के लिए उन से जो कुछ क्हा गया, उसका साराश इस प्रकार है : -

'पहला सपना :- एक विशालकाय हाथी, जिसे बडी गजशाला मे बाँधा गया था, बन्धन छुडाकर पुरानी छोटी गजशाला मे चला जाता है ।

- ससारी प्राणियो को त्याग का मार्ग रूचेगा नहीं । वे भोग मार्ग मे भटकेगे । यदि त्याग का विचार कभी आ भी गया तो वह टिकेगा नहीं ।

दूसरा सपना :- एक छोटा बन्दर किसी बडे बन्दर से झगड रहा है । भविष्य मे होने वाले आचार्य परस्पर हिल मिलकर नही रह सकेगे ।

तीसरा सपना .- कल्पवृक्ष के फल आसपास की बागड मे गिर जाते है, जिससे लोगो को वे मिल न सके

- लोग दान तो अवश्य करेगे; किन्तु उसका लाभ कुपात्र ही उठा-येगे । सुपात्रदान नहीं के बराबर होगा ।

चौथा सपना :- सुन्दर सरोवर के तट पर बैठा हुआ एक कौआ निकट ही बहते हुए गन्दे नाले का जल पीता है और पनिहारिनो के सिरपर रहे हुए घडो का जल अपनी चोच से अशुद्ध कर देता है ।

- घर का पवित्र भोजन लोगो को पसद नही आयगा और वाहर (होटल आदि) के अपवित्र भोजन को भी वे खुशी से खायँगे । साधु और श्रावक किसी का उपदेश सुनना नहीं चाहेगे । जाति और समाज के बन्धन शिथिल होते जायँगे ।

पाँचवाँ सपना :- एक जगल मे कोई तेजस्वी सिह मरा हुआ पडा है। उसे देखकर सियार भाग जाते है; किन्तु उसी (सिह) के शरीर मे उत्पन्न कीडे उसे नोच-नोचकर खा रहे है ।

- तीर्थंकर, केवली, गणधर, चौदह पूर्वधर जैसे महाज्ञानियो के अभाव मे भी जैनशासन मौजूद रहेगा । मिथ्यात्वी उससे डर कर दूर भाग जायँगे; परन्तु आन्तरिक मत-भेदो से वह छिन्न-भिन्न होता रहेगा ।

छठा सपना :- कीचड मे कोमल कमल खिल रहे है: परन्तु उनमे

रही । लेकिन फिर कनकोदरी को पस्तावा होने से प्रतिमा लौटा दी । हे बहन ! पूर्वभव की वह कनकोदरी ही तू है । बाईस घटे तक तूने लक्ष्मीवती को उसकी प्रिय प्रतिमा से वियुक्त रक्खा; इसीलिए इस भव मे तू अपने प्रियतम से बाईस वर्षों तक वियुक्त रही । वियोग की वह अवधि अब लगभग समाप्ति पर है । अब शीघ्र ही रात के बाद जिस प्रकार अरुणोदय होता हे, वैसे दुःख के बाद तुम्हारे सुख के दिन आनेवाले हे ।"

ऐसा कह कर मुनि चले गये । इधर सवा नौ मास पूर्ण होने पर अजना ने एक तेजस्वी पुत्र रत्न को जन्म दिया; किन्तु ऐसे जगल मे जन्मोत्सव मनाने के लिए फूटी थाली बजाने वाला भी कोई नहीं था । अपने इस दुर्भाग्य पर वह सिसकियाँ भर-भर कर रोने और विलाप करने लगी ।

उसी समय प्रतिसूर्य राजा अपने विमान मे बेठकर आकाश मार्ग से कहीं जा रहा था । विलाप की ध्वनि सुनते ही उसने विमान को नीचे उतारा । बातचीत से पता चला कि अजना उसकी भानजी थी । बडे प्रेम और हर्ष से दोनों को विमान मे बिठा कर वह अपनी राजधानी के राजमहल मे ले जाता है ।

कहावत है- "जैसी सीप, वैसा मोती । इस के सयम के बाद यह शिशु तेजस्वी माता से उत्पन्न हुआ था; इस लिए माता के ही समान उसके मुखमण्डल पर भी तेजस्विता चमक रही थी । इस शिशु का नाम रखा जाता है - हनुमान् ।

उधर युद्ध मे शानदार विजय प्राप्त करके अजना के पति पवजयकुमार जब अपनी राजधानी मे लौटते है तो सारे नागरिक उन पर फूलों की बरसात करके उनका स्वागत करते है। कुमार राजमहल मे पहुँचकर माता-पिता को प्रणाम करते है और फिर सीधे अजना के कमरे की ओर बढ जाते है ।

उस कमरे का बन्द द्वार खोलते है तो पता चलता है कि उसके आगन एक-एक इंच धूल जमी हुई है । वे भावुक होकर इधर- उधर नजर दौडाते है और पुकारते है - "अंजना ! ----अजना ! कहाँ हो अजना ? मेरी आँखे तुम्हे देखने के लिए तरस रही हे ! जल्दी आओ सामने आओ इन आँखो की प्यास बुझाओ ।"

परन्तु इस चीख-पुकार का उन्हे कोई उत्तर नहीं मिलता । भागते हुए वे माँ के पास लौट आते है और अजना के विषय मे पूछते हे । माँ कहती है - "नाम मत लो उस कुलक्षणा का ! जिसने अपने कुकर्म से दोनो कुलो का यश मिट्टी मे मिला दिया है । विवाह के बाद कभी तुमने

सुगन्ध का अभाव है। इससे विपरीत कूडे के ढेर पर खिले हुए कमलों मे भरपूर सुगन्ध है।

- उत्तम देश और उच्च कुल मे उत्पन्न पुरुष अधार्मिक होंगे। इससे विपरीत साधारण देश-कुल मे उत्पन्न पुरुष धार्मिक होंगे।

सातवाँ सपना :- एक किसान उर्वर भूमि मे, उगनेवाला उत्तम बीज और उर्वर भूमि मे, न उगने वाला खराब बीज बो रहा है

- अच्छे परोपकार के पवित्र कार्यों मे धन का दान न करके लोग भोग-विलास के अपवित्र कार्यों मे ही धन खर्च करेंगे।

आठवाँ सपना :- कमल की पखुरियो मे (चाँदी का) श्वेत कलश गन्दे जल से भरा हुआ है। पत्ते उस पर चिपटे हुए है।

- सुन्दर पोशाक धारण करने वालो के दिल मे दुर्भावना रहेगी। सज्जन कम होंगे, दुर्जन अधिक। दुर्जन सर्वत्र सज्जनों को सतायेंगे।

महाराज पुण्यपाल को सपनो का जैसा आशय बताया गया था, उसके अनुसार हमे आज सारे दृश्य दिखाई दे रहे है। जैसे :-

(१) मनुष्य सदा भोग के ही विचार करता है। भोगोपभोग की सामग्री जुटाने के ही लिए धनोपार्जन करता है। इस बात को वह भूल जाता है कि धनमे सुख नहीं है -

जनयन्त्यर्जने दुःखम्
तापयन्ति विपत्तिषु ।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ
कथमर्थाः सुखावहाः ॥

(जो धन कमाते समय दुःख देते है - सकटों मे सन्तप्त करते है और : मे मोहित करते हैं, वे सुखद कैसे हो सकते है ?)

धन साध्य नहीं है। वह परोपकार का साधन है। सत्कार्यों मे उसका ‸ ॥ करना चाहिये। लोगो के हृदय मे त्याग का विचार उठता तो है, परन्तु स्वार्थ के कारण वह टिक नहीं पाता।

(२) आज कितने अधिक आचार्य हो गये है ? देखिये। एक म्यान मे जिस प्रकार दो तलवारे नहीं रह सकती; एक जगल मे जिस प्रकार दो सिह नहीं रह सकते; उसी प्रकार एक धर्मस्थान मे एक साथ दो आचार्य नहीं रह सकते।

प्राचीन काल मे यह समस्या बिल्कुल नहीं थी; क्योकि तब एक समय मे एक ही आचार्य होते थे। आज की तरह जैन धर्म के भिन्न-भिन्न

उससे बात नहीं की । इक्कीस वर्ष इसी तरह बिना बोले वीत गये और गतवर्ष तो तुम युद्धार्थ अपनी सेना के साथ प्रस्थान हो कर गये थे । इस प्रकार मिलन का मौका ही नहीं आया; फिर भी उसके शरीर मे गर्भचिन्ह प्रकट होने लगे तो इससे पहले कि लोग हमारे कुल की पवित्राता पर उँगली उठाये, हमने अजना को घर से निकाल दिया ।"

कुमार :- "अन्धेर हो गया माँ ! तुम्हे ऐसा नहीं करना चाहिये था । सेना के साथ जिस दिन युद्ध के लिए हमने प्रस्थान किया था उसी दिन हमारा पडाव एक सरोवर के तट पर हुआ । चाँदनी रात थी । सारी सेना सो रही थी; परन्तु सरोवर के तट पर एक पक्षी पति के वियोगमे रो रही थी मुझे भी अजना की याद आ गई । नीद आ नही रही थी । उसी समय मेरी दशा देख कर एक मित्र ने मुझे सलाह दी कि अभी राजधानी से अधिक दूर तो हम आये नहीं है । चुप चाप यहाँ से तेज घोडे पर सवार होकर आप घर जाइये और मिलकर अरूणोदय से पूर्व यहाँ आ जाइये । किसी को मालूम भी नही होगा और आपका मन भी सन्तुष्ट रहेगा । इससे युद्ध क्षेत्र मे आप अधिक उमग से लड सकेगे और विजय आसान हो जायगी । मित्र की उस सलाह के अनुसार ही मै अजना से चुप चाप मिलने आया था माँ ! निशानी के रूप मे मे अपनी अगूठी भी उसकी उँगली मे पहिना गया था, जिससे कोई उसके चरित्र पर सन्देह न करे।"

माँ :- "हाँ, उसने प्रमाण के रूप मे तुम्हारे नाम से अकित अँगूठी दिखाई जरूर थी; परन्तु मैने समझा कि वह नकली अँगूठी अपनी इज्जत बचाने के लिए उसने बनवा ली होगी; इस प्रकार जब हमने उस पर विश्वास नहीं किया तो उसे उसके मायके भेज दिया; कुछ दिनो बाद पता चला कि यहाँ से अजना अपने पीहर गई थी; किन्तु माता-पिता ने भी उसे घर से निकाल दिया । अब पता नही, इस समय वह कहाँ है ?"

कुमार :- "कही । भी हो माँ ! मै आज ही इसी समय उसे खोजने के लिए निकल रहा हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक उसे खोज नही लूँगा, घर नहीं लौटूँगा ।"

पवनजय कुमार अजना की खोज मे निकल गये । सबसे पहले वे अपनी ससुराल के नगर मे गये और वहाँ की सीमा पर बसने वाले नागरिको से पूछा कि साल भर पहले गर्भवती अजना यहाँ से चली गई थी- अकेली; सो याद करके बताइये कि वह किस दिशा मे गई ?

फिर नागरिको के द्वारा प्रदर्शित दिशा मे वे चल पडे । अनेक दुर्लंध्य पहाड, नदियाँ और पेडो से भरे घोर जगलों की खाक छानते रहे; परन्तु अजना का कही पता नही चला ।

सम्प्रदाय नही थे; इसलिए अलग-अलग आचार्यो की जरूरत भी नही थी। सभी उपाध्याय और साधु किसी एक ही आचार्य के अनुशासन मे विचरण करते थे ।

स्पष्ट ही हम देखते है कि आज उस स्थिति का अभाव हो गया है।

(३) जहॉ तक दान का सवाल है, वह खूब हो रहा है । चन्दा मॉगने वाले रसीद कट्टे लेकर घूमते रहते है। कुछ लगो ने तो चन्दे को धन्धे के ही रूप मे अपना लिया हे । सस्थाओ के सचालको से लोग पचास रूपयो मे कट्टे खरीद लेते है । फिर उन कट्टो पर हजारो रूपये प्राप्त करके अपनी जेब मे डाल लेते है । इस प्रकार अपात्रो या कुपात्रो के पास धन चला जाता है । सुपात्रो को बहुत कम धन मिल पाता है ।

(४) आज उपदेश देना तो सब चाहते है; परन्तु सुनना कोई नही चाहता । उपदेश देने मे गुरुता के गौरव का अनुभव होता है । "मै अधिक समझदार हूँ - दूसरो का उपदेशक बनने की योग्यता रखता हूँ" - इस घमण्ड का पोषण होता है; परन्तु उपदेश सुनने से अपनी अज्ञता के बोध की वेदना होती है । दोस्तो को घर मे चाय पिलाने की अपेक्षा होटल मे ले जाकर पिलाना क्यो अधिक पसद किया जाता है ? उसमे भी अपने धनवान् होने के घमण्ड की पुष्टि होती है ।

(५) दूसरे धर्मो के देवो, गुरुओ और क्रियाकाण्डो की तुलना मे जैन धर्म के देव, गुरु आदि अधिक श्रेष्ठ होने से सम्यक्त्व कायम है और मिथ्यात्वो का हृदय मे प्रवेश नहीं हो पाता; परन्तु श्वेताम्बर, दिगम्बर, तीन थुई, चार थुई, स्थानकवासी, मूर्ति पूजक, तेरह पन्थी, तारण पन्थी आदि अनेक अलग अलग सम्प्रदायो मे टूट कर जैन शासन बिखर गया हे - प्रभाव हीन हो गया है । यह स्थिति हम सब के लिए लज्जास्पद है ।

(६) धर्म का सार है - नैतिकता और प्रामाणिकता । ये दोनो गुण जितने विदेशो मे आज पाये जाते है, उतने अपने उत्तम देश भारत मे नहीं । भारत मे जितने महापुरुषो ने धर्मगुरुओ ने-धर्मस्थानो ने-तीर्थो ने और धर्मशास्त्रो ने जन्म लिया है, उतनो ने विदेशो मे नही; फिर भी जितनी बेईमानी, मिलावट, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि भारत मे फैली है, उतनी विदेशो मे नही ।

युरोप मे वेजिटेबल सोसाइटियो की स्थापनाएॅ हो रही हे, किन्तु भारत मे मासाहार का प्रचार बढ रहा है । कुलीन विद्वान् नौकरी के लिए तरस रहे है, किन्तु आरक्षण का लाभ उठाकर हरिजन-आदिवासी वडे-वडे अफसर वनते जा रहे है ।

आखिर सब और से निराश होकर उन्होने अब यह मान लिया कि शायद जगल के हिसक पशु उसे खा गये होगे। अपनी प्रियतमा की दुर्दशा और मृत्यु के लिए वे स्वय को दोषी मानकर उसका प्रायश्चित करना चाहते थे। इसके लिए वे अग्निचित्ता सुलगाकर उसमे कूद कर अपने प्राणो की आहुति देना ही चाहते है कि उसी समय प्रतिसूर्य वहाँ आकर उनका हाथ पकड़ लेते है और सारे कुशल-समाचार उन्हे सुनाते है। फिर अपने साथ विमान मे बैठाकर पवनजय को अजना और हनुमान् से मिलाते है। कुछ दिनों बाद तीनों को विमान मे ही बिठा कर उनकी राजधानी मे छोड आते है। सर्वत्र हर्षोल्लास छा जाता हे। इस कथा से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि सकटो मे हम व्याकुल न हों। सकट के कारण अपने पूर्वजन्म के कर्मो को सोचे।

(७) आज वैज्ञानिक सामग्री के आविष्कारों से सुख पाने की लालसा के कारण टेलीवीजन, रेडियो, कार, रेफ्रीजरेटर, स्टीरियो, केसेट टेपरिकार्डर आदि मे हजारो रूपये लोग खुशी से खर्च कर देते है; परन्तु परोपकार या सार्वजनिक हित के कार्यो मे पॉच-दस रुपये भी बहुत मुष्किल से देते हे।

(८) नीम के पेड दुनिया मे अधिक है, आम के कम काटे अधिक हे, फूल कम पत्थर अधिक है, रत्न कम ! उसी प्रकार दुर्जन अधिक हे, सज्जन कम । दुष्ट हमेशा शिष्टो को परेशान करते रहते है । कुछ लोगो की आदत ही होती है कि जब तक किसी से झगड नही लेते या दस-पाच गालियाँ नहीं वक लेते, तब तक उन्हे भोजन ही नहीं भाता !

भविष्य के इस चित्रण को (जो इस समय हम देख रहे हे') स्वप्न फल के रूप मे सुनकर ससार से पुण्यपाल को विरक्ति हो गई। उन्होंने प्रभु महावीर से सयम ग्रहण करके आत्मकल्याण के पथ पर कदम बढा लिया । धन्य हो गया- उनका जीवन !!!

मदन रेखा

महामुनि मणिचूड ने अपने ज्ञानचक्षु से जान लिया की विद्याधर मणिप्रभ जिस महिला को साथ लेकर यहॉ दर्शनार्थ आया है, वह महासती मदन रेखा है जिसने घोर जगल मे प्रसूति के बाद अपनी साडी के एक हिस्से को फाड कर उसकी झोली मे नवजात शिशु को लिटा दिया था और झोली को एक पेड की शाखा से बॉधकर स्वय स्नान के लिए सरोवर तट पर पहुँची थी । स्नान के बाद साडी पहिन कर ज्यो ही यह लौट रही थी कि सहसा एक मदोन्मत हाथी ने सूँड मे उठा कर इसे अपनी पूरी शक्ति से आकाश मे उछाल दिया था । उसी समय इस विद्याधर ने अपने विमान मे झेलकर इसके प्राण बचाये; किन्तु इसके अनुपम सौन्दर्य पर यह इस समय आसक्त है और यहॉ से जाने के बाद अपने राजमहल मे ले जाकर इसे रानी बनाने की सोच रहा है । फिर क्या था ? महामुनि ने वैराग्यवर्धक उपदेश की ऐसी धारा बहाई कि विद्याधर मणिप्रभ की कामवासना शान्त हो गई । मणिप्रभ मदनरेखा को बहिन की नजर से देखने लगा । इतना ही नहीं, मुनिराज से उसने परस्त्रीगमन की प्रत्याख्यान ले लिया

प्रवचन समाप्त होने के बाद चार ज्ञान के धारक महामुनि मणिचूड से मदन रेखा ने अपने नवजात शिशु का वृतान्त पूछा । मुनिराज ने कहा :- "मिथिला नरेश महाराज पद्मरथ अपने घोडे पर सवार होकर उधर से निकले । नवजात शिशु को झोली मे लिटाकर जानेवाली मॉ कही आसपास ही होगी । ऐसा सोचकर उन्होने खूब तलाश की किन्तु जब मॉ का पता नही लगा तो उसे उठाकर वे अपने राजमहल मे ले गये । महाराज नि:सन्तान थे । उन्होंने घोषित कर दिया कि रानी को गुप्तगर्भ था, जिसने पिछली रात जन्म लिया है । सारी मिथिला मे पुत्रजन्मोत्सव इस समय मनाया जा रहा है । नमिराज उसका नाम रक्खा गया है और वह बडे प्रेम से राजमहल मे पल रहा है । वह बहुत ही पुण्यशाली जीव है ।" -चरम-शरीरी है ।

यह सुनकर मदनरेखा बहुत सन्तुष्ट हुई । उसी समय एक महातेजस्वी देव वहॉ आया । उसने पहले मदनरेखा को प्रणाम किया और फिर महामुनि को । दर्शको के मन मे सहसा यह शका हुई कि आगन्तुक देव ने पहले एक श्राविका को वन्दन क्यो किया ?

बिना पूछे ही महामुनि ने इस शका को जानकर कहा :-

"भव्यात्माओ !

सेना पर विजय प्राप्त की और सेठजी को मुक्त कराया । महाकाल ने मदनसेना नामक अपनी कन्या स मेरा विवाह कर दिया । बिदाई के समय एक नर्त्तकी और सतमजिली एक जहाज भेट की । सेठजी से भी ढाई सौ जहाजे मिल गईं । एक दिन सेठजी किराया माँगने आये तो उनके हिसाब से जितना होता था, उससे दस गुना किराया मैने दे दिया । उसके बाद तो बिना माँगे ही प्रतिमास दस-दस गुना किराया उन्हे देता रहा ।

मार्ग मे रत्नद्वीप आया । वहाँ रत्नसचय नगर के राजा कनककेतु के जिनमान्दिर के बद दरवाजे मुझ से खुल गऐ, प्रसन्न होकर राजा ने राजकुमारी रत्नमजुषा से मेरा विवाह कर दिया । वहाँ भी कर चोरी के अपराध मे पकडे गये सेठजी को मैने छुडाया ।

कुछ दिनो बाद वहाँ से बिदा होकर आगे बढे । सेठजी सोचने लगे कि यदि किसी तरह से वे मुझे समुद्र मे डुबो दे तो ढाई सौ जहाजो पर फिरसे अधिकार मिल जाय । साथ ही सतमजिला जहाज और दोनो सुन्दरीयाँ भी प्राप्त हो जायँ । अपने कुविचार को शीध्र ही उन्होने कार्यरूप मे परिणत किया ।

सूतली का कच्चा मचान बनवाकर मुझे उस पर बिठा दिया और फिर मित्रो की सहायता से रस्सी कटवाकर मुझे समुद्र मे गिरा दिया । जलतारिर्णा विद्या के बल पर मै कुकुम देश जा पहुँचा । वहाँ ठाणा नगरी के राजा वसुपाल ने राजपुत्री गुणमाला से मेरा विवाह कर दिया । मे वहाँ सानन्द रहने लगा ।

कुछ दिनो बाद सेठजी भी वहाँ आये । मुझे सकुशल देखकर चौंके। एक लाख रुपयो के पुरस्कार का प्रलोभन देकर भाँडो की एक मडली को तेयार किया, जिससे वह मुझे राजा की नजरो से गिराने का प्रयास करं । मडली को अभिनय मे सफलता मिली । राजा ने मुझे भाँडो का रिश्तेदार समझा; परन्तु शीध्र ही उनका यह भ्रम मिट गया; क्योकि झूठ के पाँव नहीं होते । मेरे कहने पर जब सतमजिले जहाज की तलाशी ली गई ता मदनसेना और रत्नमजूषा-इन दोनो ने मेरे पक्ष मे गवाही दी । राजा ने क्रुद्ध होकर सेठजी को पकड लिया; किन्तु मेरे कहने से छोड दिया । यही नही, उनका आतिथ्य सत्कार भी किया । मै तीनो रानियो के साथ राजमहल मे सानन्द रहने लगा । हालचाल पूछने पर एक दिन मदनसेना ने बताया कि सेठजी के हृदय मे काम, क्रोध और लोभ-इन तीन भूतो का निवास है । हम दोनो अनाथ अबलाओ का शीलभग करने के लिए वे हाथ मे तलवार लेकर हमारे जहाज मे रात को मिलने आये । नवपद का स्मरण करके हम समुद्र मे कूदने ही वाली थीं कि सहसा सिहवाहिनी चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई । सेठजी ने क्षमा माँगी और

आपके मन मे जो शका उठ रही है, उसका समाधान तभी होगा, जब आप इस आगन्तुक देव के पूर्वभव का वृत्तान्त सुन लेगे। यही देव पूर्वभव में इस सती पतिव्रता महिला का पति युगबाहु था। मालव प्रान्त के सुदर्शन नगर के राजा मणिरथ का यह छोटा भाई था। मणिरथ इस सती के सौन्दर्य पर आसक्त हो गया था। युगबाहु को मिलन मे बाधक मान कर मणिरथ ने एक दिन विषबुझी तलवार से उस पर प्रहार कर दिया। युगबाहु मूर्छित होकर जमीन पर लुढक गया। मणिरथ घबराकर वहाँ से भाग निकला। युगबाहु के अगरक्षकों ने उसका पीछा किया; परन्तु वह पकडा न जा सका। मदनरेखा ने देखा कि युगबाहु के प्राण अब कुछ ही मिनिटो के मेहमान है, तब इसके मस्तक को गोद मे रख कर उचित उपचार द्वारा पहले मूर्च्छा दूर की और फिर गति सुधारने के लिए धार्मिक उपदेश दिया - अनित्य भावना, अशरण भावना, एकत्व भावना की धारा बहा कर पतिदेव की भावना को निर्मल बना दिया। फलस्वरूप देह छोडने के बाद इसे देवगति मे ऐसा दिव्यरूप और अटूट वैभव प्राप्त हुआ। यदि मणिरथ के प्रति प्रतीकार की भावना से क्रोध की अवस्था में इसका प्राणान्त होता तो यह अवश्य नरक मे जाता! देवगति मे उत्पन्न होते ही इसने जान लिया कि नरक से बचाकर, स्वर्ग मे भेजनेवाली परमोपकारीणी, मदनरेखा इस समय यहाँ है; अत: प्रत्युपकार के रूप मे कुछ सेवा सहायता करनी चाहिये। अपनी हार्दिक कृतज्ञता का परिचय देने के ही लिए इस देव ने पहले मदनरेखा को वन्दन किया था। यह इसे इस समय पत्नी नहीं, किन्तु धर्मोपदेशिका गुरुणी मानता है।"

फिर श्रोताओ मे से एक ने पूछा :- "मणिरथ का क्या हाल हुआ ?"

महामुनि :- मणिरथ पकडे जाने के भय से जगल मे पैदल ही भागा जा रहा था। धीरे-धीरे अँधेरा हुआ। अँधेरे मे एक काले साँप पर उसका पाँव पड गया। उसने मणिरथ के पाँव मे डस लिया। डसते ही उसके सारे शरीर मे जहर फैल गया। मणिरथ का जीव मर कर पाँचवी नरक मे उत्पन्न हुआ है और अपने पापो का कुफल भोग रहा है।"

फिर एक अन्य श्रोता ने पूछा :- "जब मणिरथ और युगबाहु दोनों मर गये— तब सुदर्शन नगर का इस समय राजा कौन है ?"

मणिचूड :- "युगबाहु का बडा पुत्र चन्द्रयश। वही इस समय राजसिहासन पर आसीन होकर कुशलतापूर्वक उस नगर की प्रजा का पालन कर रहा है।"

एक जिज्ञासु ने पूछा :- "महासती मदनरेखा को जगल मे किसने भेजा ?"

देवी ने एक-एक पुष्पमाला दोनो को दी और कहा कि इन मालाओं के प्रभाव से शीलरक्षा होगी और आश्वासन दिया कि एक मास की अवधि मे पतिदेव से मिलाप हो जायगा । देवी अदृश्य हो गई । फिर कुछ दिनों बाद कामज्वर प्रबल होने पर सेठजी नारी का वेष पहिन कर मिलने आये; परन्तु पुष्पहार के प्रभाव से हम पुरुषरूप मे दिखाई दी । सेठजी डरकर भाग गये । फिर इस द्वीप मे आने पर आपके दर्शन हुए । मैने भी अपना वृत्तान्त उन्हे सुनाया । प्रात काल उठने पर पता चला कि सेठजी स्वय अपनी ही तलवार से कटे पडे है । मेरी हत्या करने के लिए नगी तलवार लेकर वे रस्सी के सहारे दिवार पर चढने का प्रयास कर रहे थे; परन्तु तलवार हाथ से छूट गई और रस्सी टूटने से वे अपनी ही तलवार पर गिर कर कट मरे । उनकी अन्त्येष्टि के बाद कौशाम्बीनगर मे सन्देश भेज कर धवलसेठ के पुत्र नवलसेठ को वहॉ बुलवाया और उन्हे समस्त पाँच सौ जहाजे सौंपकर विदा किया ।

कुछ दिनो बाद सुनने मे आया कि किसी राजा की कन्या गुणसुन्दरी ने प्रतिज्ञा की है कि जो सगीतज्ञ मुझ से अच्छी वीणा बजायेगा, उसी से मे विवाह करूंगी । कुतूहलवश कुबडे की आकृति मे मै वहॉ जा पहुँचा। वीणा बजाने की कला से सब को मुग्ध कर दिया । कन्या ने वरमाला मेरे गले मे डाल दी । लोगो का सन्देह मिटाने के लिए मै असली रूप मे प्रकट हुआ । राजा ने धूम धाम से विवाह कर दिया ।

फिर कचनपुर के स्वयवर मे जाकर राजा वज्रसेन की कन्या तिलोकसुन्दरी से विवाह किया । वहीं किसी आगन्तुक से सुना कि दलपत शहर के राजा धरापाल की कन्या शृगार सुन्दरी और उसकी पडिता, विचक्षणा, निपुणा, दक्षा और प्रगुणा इन पॉच सखियों ने प्रतिज्ञा की है कि स्वयवर सभा मे जो हमारी समस्याओं की पूर्ति करेगा, उसी युवक से हम विवाह करेगी । मै गया और अभीष्ट समस्यापूर्ति के द्वारा सब को सन्तुष्ट करके न छ हो से विवाह कर लिया

उसके बाद राधावेध के द्वारा सन्तुष्ट होकर कोलागपुर नरेश पुरन्दरने अपनी पुत्री जयसुन्दरी से मेरा विवाह कर दिया । फिर मुझे आप दोनो की याद आई; इसलिए आगे न बढकर लौट आया । मार्ग मे सुपार्श्वनगर के राजा महासेन की राजकुमारी तिलकसुन्दरी सर्प दश से मूर्छित हो गई थी । नवपद का स्मरण करके उसे मूर्छा से मुक्त किया तो राजा ने मेरे साथ उसका विवाह कर दिया । इस प्रकार यह विशाल सेना, ऋद्धि समृद्धि और ये समस्त पत्नियॉ आपकी प्रथम पुत्रवधू मयणासुन्दरी से प्राप्त नवपद-भक्ति का ही सुफल है ।"

बात ही बात मे रात बीत गई । राजा प्रजापाल ने अभिनन्दन के साथ सबको नगर मे प्रवेश कराया । कुछ दिनों बाद श्रीपालजी ने काका अरिदमन से अपना राज्य पुन प्राप्त कर लिया ।

मणिचूड :- बाहु की अन्त्येष्टि के बाद महासती को विरक्ति हो गई परन्तु यह गर्भवती थी । पुत्र को जन्म देकर उसका पालन-पोषण करना अपना प्रथम कर्तव्य मानती थी । यह पति की मृत्यु के बाद पापी मणिरथ जेठ अधिक सता सकता था; अत: भवन की अपेक्षा वन मे निवास करना ही इसे श्रेयस्कर लगा । फलस्वरूप यह चुपचाप जगल मे जा पहॅची । वही इसकी प्रसूति हुई । प्रसूति के बाद बच्चे को झोली मे लिटाकर यह सरोवर मे स्नान करने गई । स्नान करके वस्त्र धारण करने के बाद एक वन गज ने इसे सूँड से उठाकर आसमान मे उछाल दिया । उसी समय विद्याधर मणिप्रभ ने इसके शरीर को विमान मे झेल लिया था । फिर मदनरेखा के आग्रह से विमान को अपने अन्त:पुर मे ले जाने से पहले इसके द्वारा यहाँ लाया गया, जिससे ये दोनो दर्शन- वन्दन का लाभ उठा सके ।"

इस वृत्तान्त को सुन कर श्रोता अपने-अपने घरो को चले गये । देव ने सती से अनुरोध किया कि मुझे किसी भी तरह की सेवा का अवसर दिया जाय, सती ने कहा कि मै प्रव्रज्या लेना चाहती हूँ; अत. आप मुझे साध्वी सुव्रताजी के समीप ले चलिये । देव विमान मे बिठाकर साध्वी सुव्रताजी के निकट सती मदनरेखा को ले गया । मदनरेखा ने उन्हे वन्दन करके उनसे पच महाव्रत ग्रहण कर लिये । इस प्रकार साध्वी जीवन अगीकार करने के बाद साध्वी सुव्रताजी के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करती हुई वह तपस्या के द्वारा कर्मनिर्जरा करने लगी ।

बीस-पच्चास वर्ष बीतने पर महाराज पद्मरथ भी नमिराज को सिहासन सौपकर आत्मकल्याण की साधना मे लग गये । इस प्रकार महाराज नमि मिथिला के नरेश बन गये ।

एक दिन विशालकर्ण नामक उनका प्रिय हाथी मदोन्मत्त होकर भाग निकला । मार्ग मे आने वाले अनेक वृक्षो को सूड से उखाड कर आसमान मे उछालता हुआ विशालकर्ण मालवदेश की सीमा पर जा पहूँचा । वहाँ गाँवो मे ऊधम मचाने लगा । गरीबो की झोपडियो को गिराने लगा । उसकी भयकर चिघाड से स्त्री- पुरुष-वृद्ध बालक सभी थर थर काँपने लगे ।

यह स्थिति देखकर गाँवो के सरपच सुदर्शन नगर के राजमहल मे पहुँचे और महाराज चन्द्रयश से प्रार्थना करने लगे कि वे उस हाथी से प्रजा की रक्षा करे ।

महाराज चन्द्रयश ने तत्काल गजविद्या मे कुशल कुछ सैनिकों को भेज दिया । सैनिक मालवदेश की सीमा पर जा कर विशाल कर्ण को पकड लाये और महाराज चन्द्रयश के आदेशानुसार उसे गजशाला मे बाँध

सूक्ति-खण्ड

दिया । यहाँ भी अपने गुणो के कारण महाराज चन्द्रयश का वह प्रेमपात्र बन गया ।

उधर से ज्यो ही नमिराज को ज्ञात हुआ, त्यो ही उन्होने राजदूत के साथ यह सन्देश सुदर्शन नगर मे भिजवाया कि विशालकर्ण हमारा है; उसे शीघ्र हमे सौंप दे अथवा युद्ध के लिए तैयार रहे ।

सच्चे क्षत्रिय युद्ध की धमकियों से नहीं डरते । चन्द्रयश ने चुनौती स्वीकार कर ली । युद्धक्षेत्र मे दोनो ओर से सेनाएँ आ डटीं ।

मदनरेखा को जब मालूम हुआ कि एक हाथी के पीछे घोर युद्ध दो सहोदर भाइयो मे छिडने वाला है, तब वह तत्काल एक अन्य साध्वी को साथ लेकर युद्धक्षेत्र मे पहुँची । दोनों को एक दूसरे का परिचय कराया। इससे वैर प्रेम मे बदल गया । दोनों भाइयों का भरतमिलाप देख कर सबकी आँखे हर्षाश्रुओं से भीग गई । दोनों सेनाएँ महासती मदनरेखा की जयजयकार करके अपनी-अपनी राजधानियों को लौट गई । महासती मदनरेखा की कृपा से आज बिना युद्ध किये ही दोनों राजाओ की विजय हो गई थी !

सुविचार

* अग्नि से स्वर्ण शुद्धि के तपस्या से आत्मशुद्धि होती है·
* दूध ठडा हो तभी खटाई से दही बनता है; उसी प्रकार दिमाग शान्त हो तभी चिन्तन से समस्याओ का समाधान मिलता है ।
* प्रेम वह "मास्टर" है, जिससे किसी भी आत्मा का ताला खुल सकता है ।
* इच्छा का अभाव ही सयम है, जो उच्च धार्मिक जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकता है ।
* जिस हृदय मे क्षमा होती है, उसी मे परमात्मा निवास करते है ।
* चेहरे के रूप को दर्पण बताता है तो आत्मा के रूप को आगम ।
* माता-पिता तीर्थ के समान है; इसलिए जो माता-पिता के प्रति वफादार हे, वही प्रभु के प्रति वफादार हो सकता है ।
* विकास के साथ ज्ञान का प्रकाश आने पर पूर्णता का वह पथ दिखेगा, जिससे परमात्म पद प्राप्त हो सके ।
* स्वय को स्वय ढूँढने पर विकास होगा ।
* प्रभु की वाणी पर श्रद्धा हो, प्रतीति हो, रुचि हो तभी स्पर्श (आचरण) होगा ।
* सुने हुए सुविचारो को मेहदी की तरह घोटँते रहने (मनन करते रहने) पर वैराग्य का रग गहरायेगा और दु ख लुप्त होता जायगा ।
* जीवन का अर्थ (प्रयोजन या ध्येय) समझ मे आ जाय तो मूर्च्छा चली जाय ।
* लोग कहते है- "महाराज ! माला फिराते समय मन भटकता है" किन्तु कोई ऐसा नही कहता कि-"नोटो पर हाथ फिराते समय (नोट गिनते समय) मन भटकता है ।"
* चिन्तन की गहराई मे उतरने से वीतरागता सहज प्राप्त हो सकती है।
* भौतिक विज्ञान विश्वविनाशक है, किन्तु आध्यात्मिक विज्ञान विश्वविकासक है ।
* जीवन का प्रत्येक पल मृत्यु की दिशा मे ले जा रहा हे ।
* बाहर से इतना सारा दिल-दिमाग मे भर दिया गया है कि वहाँ और

मयणासुन्दरी

उज्जयिनी नरेश प्रजापाल ने भरी सभा मे अपनी दोनो पुत्रियो से एक प्रश्न किया :- "सुख पिता से मिलता है या पुण्य से ?"

एक पुत्री सुरसुन्दरी ने कहा - "पिता से" दूसरी मैनासुन्दरी ने कहा - "पुण्य से ।" प्रसन्न पिता ने सुरसुन्दरी का विवाह शखपुरनरेश अरिदमन से कर दिया, किन्तु मयणासुन्दरी के उत्तर से अप्रसन्न होकर उसका विवाह उबर राणा नामक एक कोढी से किया ।

नवपद की विधिपूर्वक आराधना से कोढ मिटने के बाद धर्मस्थान से राजमहल की ओर जाते समय माँ कमलप्रभा के दर्शन हुए । श्रीपाल ने चरण छुकर कहा .- "मयणा ! यह तुम्हारी सास है । प्रणाम करो ।"

मयणा प्रणाम करके बहुत खुश हुई । तीनो राजमहल मे गये । प्रजापाल ने कमलप्रभा का स्वागत किया और पूछने पर अपना पिछला वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया - "हे राजन् ! मै चम्पानरेश सिहरथ की रानी हूँ । श्रीपाल मेरा पुत्र है । जब यह पाँच वर्ष का था तब इसके पिता चल बसे । राज्य हडपने के लिए इसके काका अजितसेन इसे जान से मार डालना चाहते है- ऐसी भनक पडते ही मै इसके प्राण बचाने के लिए इसे लेकर जगल मे भाग गई । वहाँ सात सौ कोढियो के एक दल को देखा । श्रीपाल को सुरक्षा के लिए मैने दल के साथ भेज दिया और मै कोढ के इलाज की दवा ढूँढने चल पड़ी । वर्षों बाद आज अकस्मात् इसे अपनी सह धर्मिणी के साथ देखा और इन दोनो के अनुरोध से राजमहल मे चली आई ।

राजा ने राजमहल के एक सुन्दर कक्ष मे तीनो को ठहराया । वे सानन्द रहने लगे । एक दिन श्रीपाल ने नगर मे पर्यटन करते समय किसी प्रजाजन को यह कहते हुए सुना कि ये प्रजापाल के जमाई है । यह बात चुभ गई; क्यो कि नीतिकारों ने कहा है -

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता.,
मध्यमास्तु पितुर्गुणैः ।
अधमाः मातुलैः ख्याताः,
श्वशुरैरधमाधमा. ।।

(उत्तम अपने गुणो से विख्यात होते है; मध्यम पिता के गुणो से, नीच मामा के गुणों से और नीचतम व्यक्ति ससुर के नाम से जाने जाते है)

कुछ (आत्मज्ञान) भरा ही नहीं जा सकता अर्थात् स्वय ही स्वय को खोजने की मन कामना उत्पन्न नहीं की जा सकती ।

* सिद्धान्तो का सब से विश्वसनीय मित्र परमात्मा है और सबसे बडा दु ख है-असन्तोष ।
* ज्ञान और क्रिया ये दोनो जीवनरथ के वे पहिये है, जो परमपद तक पहुँचा सकते है ।
* वाणी का विवेक और व्यवहार की शुद्धि जीवनविकास के लिए आवश्यक हे ।
* किसी की प्रशसा करना हो तो पॉच मिनिट मे जीभ रुक जाती है; परन्तु यदि निन्दा करना हो तो बिना रुके जीभ घटो चलती रहती है-जरा भी नहीं थकती !
* सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की प्रतीक अक्षत की तीन ढेरियो पर एक सौ आठ अक्षतो से अर्धचन्द्राकार सिद्धशिला बनाई जाती हे, जो पचपरमेष्ठि के एक सौ आठ गुणो की स्मारिका है ।
* अशुभ विचारो को निर्वासित कर शुभ विचारो को प्रवेश देने से जीवन सन्तुलित रहता है ।
* आज सर्वत्र जिस अनुपात मे पुद्गलो (रुपयो) का उन्मूल्यन हुआ है, उसी अनुपात मे मानवता का अवमूल्यन हो गया है ।
* अज्ञान से कायरता, कायरता से भय और भय से दु ख होता है ।
* भावी जीवन की भव्यता वर्तमान जीवन की भव्यता पर निर्भर है ।
* हृदय की गहराई मे ज्यों-ज्यो उतरते जायँगे, त्यो-त्यो आत्मा का वास्तविक निर्मल स्वरूप दिखाई देने लगेगा
* सुदेव, सुगुरु और सुधर्म से यदि मोक्ष जैसा सर्वोत्तम पद मिल सकता है तो फिर ससार मे क्या नहीं मिल सकता ?
* नाक श्वासोच्छ्वास के लिए मिला है; उसकी क्षणिक तृप्ति के लिए पुष्पो के प्राण लेना अनुचित है ।
* ट्रेन के डिब्बे मे जब कोई नया यात्री घुसता है तो पहले लोग उसका विरोध करते है; किन्तु बाद मे उससे मित्राता कर लेते है ! क्या यह मित्राता पहले नही की जा सकती ?
* सच्ची और मीठी बोली से, दया-दान से सयम (इन्द्रियो के और मन के निग्रह) से तथा सज्जनो का सन्मान करने से कोई भी व्यक्ति प्रसन्नता पा सकता है ।

फल यह हुआ कि अपने गुणों से ख्याति अर्जित करने के लिए बारह वर्ष आठ दिन के बाद निश्चित रूपसे लौट आने का वचन माता और पत्नी को देकर श्रीपालजी चल पडे ।

वचन के ही अनुसार एक वर्ष और सात दिन की अवधि पूरी होने पर रात को गुप्तरूप से राजमहल मे पहुँचकर श्रीपाल अपनी माता और मैना को नगरी से बाहर ले गये । वहाँ अपने डेरे पर ले जाकर उन्होंने अपना सपूर्ण वृत्तान्त संक्षेप मे दोनो को इस प्रकार सुनाया :-

"जगल मे भ्रमण करते हुए, एक विद्याधर की विद्यासिद्धि मे सहायक बनने के कारण प्रसन्न होकर मुझे उसने दो विद्याएँ सिखा दी-जलतारिणी और शस्त्रातारिणी ।

आगे बढने पर एक योगी को मेरी उपस्थिति से स्वर्णसिद्धि मे सहायता मिल गई । उसने भी अत्यन्त आग्रह के साथ मुझे थोडासा स्वर्ण भेट किया ।

वहाँ से चलकर भडौच नगर के बाहर एक उद्यान मे विश्राम करने बैठा तो मुझे नींद आ गई । लोगो का शोरगुल सुनकर मैने आँखे खोली तो अपने को सैनिको से घिरा पाया । पूछने पर पता चला कि धवल सेठ के अटके हुए पाँच सौ जहाजो को चलाने के लिए वे मेरी बलि देना चाहते है । मैने सेठजी के पास पहुँच कर कहा कि किसी पुरुष की हत्या से न कभी कोई जहाज चला है और न चलेगा । यह एक भयकर अन्धविश्वास है । मै बिना हत्या किये ही आपके सारे जहाज चला सकता हूँ ।

फिर नवपद का स्मरण करते हुए मैने एक-एक जहाज को छुआ कि वह तत्काल चल पडा । सेठजी के साथ जहाज मे दूर-दूर तक पर्यटन का अवसर मिलेगा-ऐसा सोचकर सौ स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिमास के किराये पर जहाज में मैने स्थान ले लिया । इस प्रकार मेरी सामुद्री यात्रा प्रारभ हुई ।

बर्बरदेश मे पहुँचे । वहाँ महसूल न चुकाने पर अपराध मे धवलसेठ पकडा गया । सेठजी को नीतिकारो का यह वाक्य याद आ गया -

"सर्वनाशे समुत्पन्ने
अर्धं त्यजति पण्डितः ।।"

(सर्वनाश के अवसर पर जो आधे का त्याग कर देता है, वह पडित है)

बोले :- "श्रीपालजी ! कृपा करके मुझे छुडा लीजिये । माल से भरी हुई आधी जहाजे मै आपको भेट कर दूँगा ।"

मैने शस्त्रानिवारिणी विद्या का उपयोग करके युद्ध मे महाकाल को

* "अहम् " को "अर्हम् " बनाने के लिए आवश्यक है- परमात्मा का निरन्तर ध्यान ।
* शुद्धि और सरलता से ही ऐसी योग्यता प्राप्त होती है, जिससे आकृष्ट होकर मुक्तिरमणी जीव को वरमाला पहिनाती है ।
* ज्ञान और अनुभव का अभाव ही जीव को इच्छाओं का गुलाम बनाता है ।
* ज्ञान से जो इन्द्रियाँ आत्मा को मोक्ष दिला सकती है, विषयासक्ति से वे ही नरक भी दिला सकती है
* हजारों नदियों के मिलने पर भी समुद्र नहीं भरता; उसी प्रकार हजारों इच्छाएँ पूर्ण करने पर भी मन नहीं भरता ।
* जैसे जैसे आत्मा गुणस्थानों पर चढती जाती है, वैसे ही मोहराज का जोर बढ़ता जाता है और अनुकूल प्रलोभन उसे आकर्षित करने के लिए उठ खड़े होते है ।
* मदनरेखा ने मणिरथ को समझाया :- "शिष्ट कभी उच्छिष्ट नहीं खाते !"
* आयुष्य अल्प है, मृत्यु का ठिकाना नहीं; अतः कल का काम आज और आज का काम अभी (इसी समय) कर लेना ही समझदारी है
* यदि इस भव की भव्यता (मानवजीवन की महत्ता) समझ मे नहीं आई तो आत्मा को दिव्यता कैसे प्राप्त होगी ?
* साधर्मिक वात्सल्य से त्याग और प्रेम की भावना पुष्ट होती है ।
* जगत् के लिए अर्थ और काम है, किन्तु जीवन के लिए धर्म और मोक्ष है ।
* जिनवाणी हृदय को उसी प्रकार स्वच्छ करती है, जिस प्रकार वस्त्रों को साबुन या बर्तनो को राख अथवा इमली ।
* यदि जीवन का लक्ष्य निर्धारित न हो तो सकट के समय वह ठाम (स्थान) छोड देता है, दाम (धन) खो बैठता हैं और हाम (हिम्मत) हार जाता है ।
* दूध स्थिर हो तभी दही जमता है; उसी प्रकार मन स्थिर हो तभी उसमे विद्या जमती है ।
* ज्ञान के बिना धार्मिक क्रियाएँ नीरस (शुष्क) होती है ।
* थके हुए को लेटना पड़ता है-बड़बडानेवाले को मौन रहना पडता हे! इससे सिद्ध होता है कि शक्ति का उगम शान्ति है, तूफान नहीं ।